प्रकाशक :
अखिल भारतीय पंचायत परिषद्
वीरेन्द्र भवन, पटपड़गंज,
नई दिल्ली।

●

प्रथम संस्करण : 1978

मूल्य : 8.00 मात्र

मुद्रक :
पॉपुलर प्रिंटर्स,
नवाब हवेली, त्रिपोलिया बाजार,
जयपुर–302 002

दो शब्द

भारतीय संविधान के 40 वें निदेशक सिद्धान्त के अनुसार देश में ग्राम-पंचायतों की स्थापना के पच्चीस वर्ष 1975 में पूरे हुये । अ० भा० पंचायत परिषद ने सारे देश की सरकारों एवं पंचायतों से 1975 को पूरे वर्ष पंचायतों के रजत जयन्ती वर्ष के रूप में मनाने का निवेदन किया । परिषद ने इस अवधि में उनसे कई रचनात्मक कार्यक्रम पूरा करने का संदेशा दिया था । तद्नुसार कई अच्छे एवं लोकोपयोगी कार्य पूरे हुये ।

'भारत में पंचायतों के पच्चीस वर्ष' पुस्तक उसी दिशा में एक प्रयास है जिसे डा० अवध प्रसाद जी ने बड़े ही छान-बीन एवं अध्ययन पूर्ण तरीके से लिखा है । लेखक ने प्राचीन भारत के ग्राम, जन, जान जानपद, विश, राष्ट्र, समिति एवं सभा जैसे विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या करते हुये अर्वाचीन पंचायत समिति एवं जिला परिषद का पूर्ण चित्र खींचा है । इन्होंने पंचायतीराज के वर्तमान स्वरूप तथा इनके कर्त्तव्यों एवं कठिनाइयों पर भी प्रकाश डाला है । समाज के कमजोर वर्ग और पंचायतों के कर्त्तव्य पर एक विशेष अध्ययन जोड़ कर इन्होंने पुस्तक की गरिमा बढ़ाई है एवं पंचों का कर्त्तव्य निष्ठा की ओर ध्यान खींचा है ।

डा० प्रसाद ने इस पुस्तक को लिखकर पंचायत जगत की एक बड़ी कमी की पूर्ति की है । अतः परिषद उनका आभार मानती है ।

दिनांक
8–3–78

लाल सिंह त्यागी
अध्यक्ष
अ० भा० पंचायत परिषद



भूमिका

भारतीय संविधान के निदेशक तत्वों में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राज्य का कर्त्तव्य होगा कि ग्राम पंचायतों को संगठित करे और उनको स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाई बनाए। वस्तुतः हमारे राष्ट्रीय आंदोलन ने बहुत पहले से पंचायत प्रणाली का प्रतिपादन किया है। राष्ट्रीय कांग्रेस के कई अध्यक्षों ने अपने भाषणों में पंचायत की चर्चा की है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी तो आजीवन पंचायत के सशक्त प्रतिपादक रहे।

स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में ही स्वर्गीय पं० गोविन्द वल्लभ पंत की अध्यक्षता में कांग्रेस ने एक ग्राम पंचायत कमेटी बनाई जिसमें पंचायत समस्या के विविध पहलुओं पर विचार कर एक सारगर्भित रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट ने देश में बाद में होने वाले तमाम पंचायत सम्बन्धी कार्यकलापों पर प्रभाव डाला। स्वर्गीय श्री बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में बनी सुप्रसिद्ध कमेटी की पंचायत रिपोर्ट ने पंचायतों के स्वरूप को, उसकी गठन प्रणाली को सुनिश्चित दिशा दी।

प्रश्न यह है कि हमारे महान् राष्ट्रपिता ने पंचायत को क्यों इतनी प्रधानता दी ? वे भारत को खूब जानते थे, जैसा कोई और न जानता था। और भारतीय मानस को समझने वाले बापू ने यही समझा कि नवजागृत भारत का मानव, जो सुदूर ग्रामों में रहता है, अपनी गरिमा और गौरव को पंचायत के पुनरुत्थान द्वारा ही प्राप्त कर सकता है।

सच तो यह है कि पंचायत भारतीय समाज में शाश्वत है। वैदिक और पौराणिक ग्रंथों में इनकी चर्चा है। नारद ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया था :

कच्चिद्द्राः कृतप्रज्ञाः पंच पंच स्वनुष्ठिताः।
क्षेमं कुर्वान्ति सहृत्य राजन्जनपदे तव ॥

अर्थात् (सारांश) क्या आपके राष्ट्र के वीर और बुद्धिमान पंच पंचायत के कार्य का सुचारू रूप से देखभाल करते हैं और इस प्रकार जनता के सुख को बढ़ावा देते हैं ?

वस्तुतः यदि भारत अपने अतीत में और अपने वाद के इतिहास में गौरव और गरिमा को प्राप्त कर सका तो उसका एक मुख्य कारण यह था कि हमारे यहां सुख और समृद्धि, न्याय और समता पर आधारित परस्पर सहयोगी ग्रामीण समाज था। कृपि तब लाभकर थी और उससे प्राप्त सरप्लस राष्ट्र के उत्तरोत्तर विकास में अपना महान योगदान देती थी। उस समय की इस संतोपजनक, प्रगति-जनक भारतीय अर्थनीति की तह में हमारी प्राचीन पंचायत प्रणाली रही।

हमारा प्राचीन और महान देश अपने इतिहास में एक नया मोड़ ले रहा है। हमारा ध्येय है कि हम अपने देश में सुखी और न्याय पर आधारित एक नयी समाज रचना करें। यह नवरचना तब तक संभव नहीं, जब तक हम अपने ग्रामों में जीवन को नया मोड़ न दें और यह हम शांतिपूर्ण तरीकों से लाना चाहते हैं, हम हिंसा और संघर्ष के मार्ग को छोड़ चुके हैं। यदि ऐसा करना है तो हमारे पास एक ही मार्ग है, और वह है—ग्रामों में पंचायतों को जीवंत और गतिमान रूप देना। यह मार्ग राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हमारे लिए प्रशस्त किया है।

पंचायतों की समस्याओं पर अध्ययन हो रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में हमारे नवयुवक मित्र डा० अवध प्रसाद ने पंचायतों की समस्या पर अपना गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। अवध प्रसाद जी गंभीर अन्वेषक हैं और पंचायतों के लिये उनमें उत्साह है। उनके इस कार्य में उनको प्रेरणा श्री लालसिंह जी त्यागी, सभापति अखिल भारतीय पंचायत परिपद से मिली है। त्यागीजी के योग्य और अनुभवी ज्ञान से अवध प्रसाद जी को पूरा लाभ मिला है और यह तो सर्वमान्य है कि त्यागी जी आज मनसा, वाचा, कर्मणा पंचायतों के पुनरुत्थान कार्य में तन-मन-धन से जुटे हुए हैं।

भारतीय संविधान में ग्राम पंचायतों को स्थान दिया गया है और सरकार ने उस व्यवस्था के आधार पर पंचायतों के विस्तार का प्रयास किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के वाद ग्राम पंचायतों की स्थापना की गई। देश में ग्राम पंचायतों को स्थापित हुए पच्चीस वर्ष से अधिक समय हो गया है। देश में पंचायत की व्यवस्था को कालक्रम के अनुसार दो कालों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम प्रयास के रूप "में ग्राम पंचायतों की स्थापना" और दो, वलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर 2 अक्टूबर, 1959 को पंचायतीराज की स्थापना की शुरुआत। इस समय पूरे देश में पंचायतीराज की व्यवस्था कायम हो चुकी है। यह विपय राज्य अनुसूची के तहत है, इस कारण विभिन्न

राज्यों में पंचायतीराज की व्यवस्था में कमोवेश अंतर है। राज्य के अधीन होने के कारण पंचायतीराज की दिशा में प्रगति भी सभी राज्यों में एक-सी नहीं है। फिर भी पूरा देश इस दिशा में प्रयत्नशील है।

पिछले पच्चीस वर्षों में ग्रामपंचायत एवं पंचायतीराज पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। पंचायतीराज पर पुस्तक प्रकाशन के अतिरिक्त गोष्ठियों तथा इस विषय पर बनी समितियों ने विस्तार-पूर्वक विचार किया है और इनका प्रकाशन भी हुआ है। इन सब कार्यों में अखिल भारत पंचायत परिषद का प्रमुख योगदान रहा है। पंचायतीराज पर जो साहित्य प्रकाश में आया है, उनमें ज्यादातर साहित्य समाज के बौद्धिक वर्ग तक ही सीमित रहता है। सामान्य-जन की भाषा में पंचायतीराज पर साहित्य का अभाव रहा है। इस दिशा में जो भी प्रयास हुए है, वह पंचायतीराज के सैद्धान्तिक पक्ष को सामने लाते हैं। शोध एवं सर्वेक्षण साहित्य आमतौर पर अंग्रेजी में प्राप्य है। यह प्रसन्नता की बात है कि अखिल भारत पंचायत परिषद हिन्दी में पुस्तक प्रकाशित कर रहा है। यह पुस्तक पंचायतीराज के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों को सरल एवं सामान्य-जन की भाषा में प्रस्तुत करती है। इसमें शोध साहित्य के गुण के साथ-साथ सामान्यजन को ग्राह्य करने की सरलता भी है। इस पुस्तक को पढ़ जाने से ग्रामपंचायत के मूल सिद्धान्त, भारत में उसका विकास, विभिन्न राज्यों में इसकी स्थिति तथा पंचायतीराज की समस्याओं की जानकारी हो जाती है।

प्रस्तुत पुस्तक में डा० अवध प्रसाद ने संतुलित भाषा में भारत में पंचायतीराज की जानकारी प्रस्तुत करने के साथ इसकी समीक्षा प्रस्तुत की है। हम यह स्वीकार करते हैं कि पंचायतीराज के लक्ष्य की पूर्त्ति में जितना प्रयास किया जाना चाहिये था, उतना नहीं किया जा सका है। कई राज्य तो पंचायतीराज के प्रति उदासीन दिखाई देते हैं। कुछ राज्य अवश्य पंचायतीराज के प्रति रुचि रखते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि पूरे देश में पंचायतीराज की संस्थाओं को मजबूत एवं सक्रिय बनाया जाए। भारत गांवों में बसता है और जब तक गांव का सामाजिक एवं आर्थिक विकास नहीं होगा, तब तक भारत का विकास संभव नहीं। यह कार्य पंचायतीराज के माध्यम से संभव है, क्योंकि गांव के बाहर की एजेंसी गांव की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकती है। गांव के लोगों में ही इतनी क्षमता विकसित करनी होगी और उसे इतना मजबूत बनाना होगा कि वे अपनी समस्याएं स्वयं सुलझा सकें। यह प्रसन्नता की बात है कि पिछली चौथाई शताब्दि (पच्चीस वर्षों) से ग्रामपंचायत एवं पंचायतीराज का अनुभव गांव के लोगों को है। आज देश में पंचायतीराज के बारे में उदासीनता दिखाई देती

है। इस उदासीनता को समाप्त करना होगा। केन्द्र एवं राज्य सरकार को इस दिशा में पहल करनी चाहिए। केन्द्र को राज्यों में पंचायतीराज को गति प्रदान करने में रुचि दिखाने की आवश्यकता है। इस दिशा में अखिल भारत पंचायत परिषद जैसी संस्था की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। परिषद पंचायतीराज की प्रतिनिधि संस्था है, जो कि पूरे देश के पंचायतीराज का प्रतिनिधित्व करती है।

देश की मौजूदा परिस्थिति में पंचायतीराज की संस्थाओं का महत्व बढ़ जाता है। देश में सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्निर्माण का जो नया वातावरण बना है, उसमें पंचायतीराज की संस्थाओं की भूमिका पर इस पुस्तक में उचित बल दिया गया है। आज समाज के कमजोर वर्ग के विकास के लिये नया वातावरण बना है। इस व्यापक कार्यक्रम की पूर्ति का माध्यम पंचायतीराज को बनाना होगा। इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिये कि समाज के कमजोर वर्ग को पंचायतीराज की संस्थाओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाय, साथ-साथ इसका भी प्रयास किया जाना चाहिये कि आर्थिक कार्यक्रम का उन्हें पूरा लाभ मिले, जिनके लिये ये कार्यक्रम हैं। आज समाज के सभी अंगों का सम्यक् विकास करने के लिये व्यापक कार्यक्रम हाथ में लिया गया है। साथ ही साथ संगठन को मजबूत बनाने का कार्य भी तत्परता से किया जा रहा है। पंचायतीराज की संस्थाओं को विकास के कार्यक्रमों की पूर्त्ति का माध्यम बनाया जाना चाहिये।

भारत पुनः उठ रहा है। विदेशी शासकों ने भारत का बड़ा विनाश किया, पर सबसे गहरी हानि जो उन्होंने पहुंचायी, वह यह है कि—उन्होंने हमारे शताब्दियों पुराने पंचायती गठन का नाश किया। मुझे प्रसन्नता है कि हमारा राष्ट्र इस ओर ध्यान दे रहा है। प्रस्तुत रचना के लेखक डा० अवध प्रसाद स्वयं ग्रामीण जीवन से आये हैं। उनका यह प्रयास उनकी योग्यता का और उनकी लगन का परिचायक है। मैं आशा करता हूं कि प्रस्तुत पुस्तक व्यापक रूप से पढ़ी जायेगी और इसमें कही गई बातों पर ध्यान दिया जायेगा। मुझे विश्वास है कि डा. अवध प्रसाद जी भी अपने पंचायत संबंधी शोधकार्य में बाद में भी लगे रहेंगे, उनसे बड़ी आशाएं हैं। मैं अखिल भारतीय पंचायत परिषद और उसके कर्मठ अध्यक्ष श्री लालसिंह त्यागी को भी धन्यवाद देना चाहता हूं, जिनकी प्रेरणा और सहायता से ही डा० अवध प्रसाद का यह ग्रंथ संभव हो सका।

(हर्ष देव मालवीय)
संसद सदस्य

विषय सूची

पहला अध्याय

प्राचीन भारत में पंचायत की परम्परा

पृष्ठभूमि:—स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ग्रामव्यवस्था को भी नई दिशा देने की दृष्टि से पंचायतीराज की व्यवस्था को विकसित करने का प्रयास प्रारम्भ किया गया। इस विषय पर विचार करते समय यह बात कही जाती है कि ग्रामपंचायतें हमें विरासत में मिली हैं और इसकी ठोस परम्परा प्राचीन व्यवस्था में रही हैं। कालांतर में यह व्यवस्था लुप्त होती गई। मुगल एवं ब्रिटिश भारत में प्राचीन काल से चली आ रही ग्राम पंचायत की व्यवस्था को समाप्त करने का पूरा प्रयास किया गया। इसके स्थान पर अपने स्वार्थ के अनुसार सुविधाजनक व्यवस्था विदेशी साम्राज्य ने स्थापित की। स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान गांधीजी के मार्गदर्शन में ग्रामपंचायत की व्यवस्था को पुनः स्थापित करने का प्रयास प्रारम्भ हुआ। मौजूदा पंचायतीराज व्यवस्था को प्राचीन कालीन ग्राम पंचायत की ऐतिहासिक विरासत और गांधीजी द्वारा प्रस्तुत विचार और व्यवहार का परिणाम मान सकते हैं। वैसे आज की यह व्यवस्था न तो प्राचीन काल की ग्रामपंचायत व्यवस्था की और न गांधीजी द्वारा प्रस्तुत पंचायत की ही नकल है। इसे सबका मिश्रण कहा जा सकता है।

प्राचीन शासन की दिशा:—ग्राम पंचायत की प्राचीन कालीन व्यवस्था पर संक्षेप में विचार करना उपयोगी होगा। प्राचीन भारत में पंचायत की व्यवस्था पर लिखते समय पूर्व के ग्रन्थों का उपयोग ही एक माध्यम है जिसके आधार पर उस समय की व्यवस्था की झांकी प्रस्तुत की जा सकती है। इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान श्री अनंत सदाशिव अल्तेकर* ने कहा है कि प्राचीन काल की पंचायती व्यवस्था पर व्यापक एवं प्रमाणित अध्ययन की कमी है। इस कमी को एक सीमा तक उन्होंने पूरा करने का प्रयास किया है। बाद में अन्य विद्वानों ने भी इस विषय पर अध्ययन किया जिस पर से यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत में ग्राम पंचायत की ठोस परम्परा थी। यहां यह स्वीकार करना चाहिये कि प्राचीन

* श्री अनन्त सदाशिव अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, इलाहाबाद।

काल की पंचायत व्यवस्था की अपनी सीमा थी। आज की बदलती परिस्थिति में उस व्यवस्था की नकल नहीं की जा सकती है। हां, उसका ऐतिहासिक महत्व है। आज पंचायतीराज के विचार का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक विकास हो चुका है। इतना अवश्य है कि भारतीय समाज, सामाजिक व्यवहार और मानव स्वभाव में पंचायत के गुणों का धुंधला अंश देखा जा सकता है। यह अंश सभी समाज व्यवस्थाओं में एक-सा नहीं है। आदिवासी समाज में यह एक प्रकार की है तो अन्य में दूसरे ढंग की। हमने जिस प्रकार की पंचायतीराज व्यवस्था को स्वीकार किया है वह सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों दृष्टियों से प्राचीन से भिन्न है। प्राचीन कालीन व्यवस्था सब जगह एक-सी नहीं थी, विभिन्न कालों में यह व्यवस्था भिन्न-भिन्न रहीं। एक मुख्य बात यह है कि प्राचीन व्यवस्था कुछ अपवादों को छोड़ कर सामान्यतया राजतंत्रीय था। अतः पंचायत की वह व्यवस्था राजतंत्रीय व्यवस्था की छत्र-छाया में फला-फूला। हालांकि ग्राम के सामान्य जीवन में राजतंत्र का हस्तक्षेप कम था और गांव अपनी व्यवस्था में स्वतंत्र थे।

आर्य कालः—आर्य काल में ग्राम एवं ग्राम पंचायत की व्यवस्था एक स्थान पर स्थायी रूप से व्यवस्थित रूप में नहीं थी। उस समय की परिस्थिति के अनुसार लोग समूह में रहते थे और उपभोग की वस्तुओं की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते थे। आर्य लोग अपने समूहों को "जन" कहते थे। वे समूह परिवार के नमूने पर बने होते हैं और प्रत्येक समूह का नाम उसके किसी बड़े पूर्वज या विद्वान पुरुष के नाम पर पड़ता था। प्रत्येक जन की कई टुकड़ियां होती थीं, जो ग्राम कहलाती थीं। ग्राम शब्द का मूल अर्थ है जत्था या समुदाय। प्रारम्भ में ये समुदाय घुमंतू थे। बाद में ये समुदाय एक स्थान पर स्थायी तौर पर बस गये। जिस जमीन पर समुदाय बसा, वह जमीन और वहां के लोग एक ग्राम के कहे जाने लगे। लेकिन अनेक घूमते-फिरते ग्रामों की चर्चा भी वैदिक वांङमय में है, जैसे "शर्याति मानव अपने ग्राम के साथ घूमता-फिरता था"* । ग्राम का नेता ग्रामीण कहलाता था।

राजनीतिक रूप से संगठित जन या विशः को राष्ट्र कहते थे। राजा राष्ट्र का मुखिया होता था। राष्ट्र राजा को चुनती थी अर्थात् उसे चुनती अथवा यदि वह पिछले राजा का बेटा होता तो उसे पसंद कर राजा बनने की स्वीकृति दे देती। राज्याभिषेक के समय राजा राष्ट्र के साथ यह प्रतिज्ञा करता कि यदि मैं राष्ट्र का द्रोह करूं तो मैं अपने जीवन, अपने सुकृत, अपनी सन्तान सबसे वंचित

* शतपथ ब्राह्मण 4. 1. 5. 2.

किया जाऊं । यदि वह सच्चा न निकले अर्थात् अभिषेक के समय की हुई प्रतिज्ञा को पूरा न करे तो राष्ट्र उसे पदच्युत् और निर्वासित भी कर देता था ।

राजा समिति की सहायता से राज्य करता जो समूची राष्ट्र की संस्था थी । राज्य की बाग-डोर समिति के हाथ में रहती थी । समिति के गठन के बारे में प्रामाणिक तथ्य की कमी है । परन्तु ग्रामणी, सूत, रथकार और कर्मार अर्थात् प्रत्येक ग्राम के ग्रामणी और शिल्पी उसमें अवश्य होते थे । राज्य की शक्ति इस समिति में निहित होती थी । राजा का वरण, निर्वासन और पुनर्वरण समिति द्वारा होता था । समिति में सदस्यों की संख्या काफी होती थी । सभा नाम की एक संस्था होती थी, जो कि समिति से छोटी होती थी । सभा को संचालक मण्डल कह सकते हैं, जो कि न्यायालय का काम भी करती थी । यह व्यवस्था ग्राम स्तर पर भी थी । प्रत्येक ग्राम में एक सभा होती थी । सभा में गांव के वृद्ध के साथ-साथ युवक भी शामिल होते थे । सभा ग्राम की व्यवस्था के लिये जिम्मेदार होती थी । इस प्रकार ग्राम एवं राष्ट्र दोनों स्तर पर सभा नाम की संस्था होती थी । सभा ग्राम पंचायत का ही एक रूप है ।

आर्यों के बाद जनपद काल में ग्राम व्यवस्था का एक रूप देखने को मिलता है । जनपद राज्य व्यवस्था में राज्य भूमि पर निर्भर हो गया था, तो भी भूमि राज्य की नहीं, कृषकों की सम्पत्ति थी । राजा उपज का एक भाग वसूलता था । गांव के किसान अपनी जमीन के स्वामी थे । प्रत्येक ग्राम में अनेक कुल अर्थात् संयुक्त परिवार रहते थे । ३० से १००० संयुक्त परिवारों तक के ग्रामों का उल्लेख है ।

ग्राम के लोग सामूहिक रूप से सिंचाई और अन्य सामूहिक कार्यों का प्रबन्ध करते । ग्राम-भोजक ग्राम की सभा का एवं ग्राम के सामूहिक जीवन का अंग होता था, पर वह मनमानी नहीं कर सकता था । ग्राम के सभी लोग मिलकर सामूहिक कार्यों पर विचार और निर्णय करते । ग्राम सभायें ग्राम में सभा-भवन, पाठशालायें बनवातीं, तालाब खुदवातीं और बांध बनवातीं थीं । ग्राम सभा में निश्चय के अनुसार ग्राम के लोग खासकर युवक श्रमदान करते थे । श्रमदान में स्त्री-पुरुष सभी शामिल होते थे । इस प्रकार ग्राम में सामूहिक कार्य श्रमदान से किये जाते थे । श्रमदान गांव में आर्थिक विकास का मुख्य साधन था ।

प्राचीन ग्राम व्यवस्था :—प्राचीन कालीन व्यवस्था में ग्राम व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने एवं कल्याण के लिए सामूहिक प्रयत्न का उदाहरण मिलता है । ग्राम सभा "सर्व" के कल्याण के लिए इन्द्र से प्रार्थना करता है कि वह

वर्षा दे ताकि सभा (ग्राम) के लोग एक होकर (नरिण्टा) कार्य कर सकें। अथर्ववेद में नीचे लिखे रूप में ग्राम व्यवस्था की कल्पना को चित्रित किया गया है।

सभा च मा समिति श्चावतां प्रजापतेर्दु हितशैं संविदा ने।
येना संगछा उप मास शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगनेषु ।।
विद्म ते सभे नाम नरिण्टा नाम व असि।
मे ते के च सभासदस्ते में सन्तु सवाचसः ।।
एषामहं सभासीननां वचो विज्ञानमा द दे।
अस्याः सर्वस्याः संसदो ममिन्द्रा भगिनं कृणु ।।
यद्रवो मनः परागतं मद्रवड्वर्हि क वेह वा।
तद्रव आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ।।*

भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान डा० के० पी० जायसवाल ने अथर्ववेद एवं पृथ्वी शुक्त का अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनका मानना है कि प्राचीन भारत में राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने का तरीका आपसी विचार विनिमय था। इसके लिए समिति एवं संस्थाएं थीं। लोग अपने विचार सभा के सम्मुख रखते थे। सभा की बैठक में समस्या सुलझाई जाती थी। अथर्ववेद के पृथ्वी सुक्त (56) में कहा गया है।

ये ग्रामा प्रदरण्यं माः सभा अधिभूम्याम्।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु याद वदेमते ।।**

प्राचीन ग्राम व्यवस्था में ग्राम प्रमुख का विशेष महत्व था। वाल्मीकि रामायण में और बाद में रामचरित मानस में ग्राम व्यवस्था में मुखिया की व्यवस्था का जिक्र है। वाल्मीकि रामायण में दो प्रकार के ग्राम एवं उसकी व्यवस्था का उल्लेख है। जंगल के समीप के छोटे गांवों को घोष कहा, जबकि बड़े गांवों को ग्राम कहा गया है। ग्राम के प्रधान को क्रमशः घोष महत्तर और ग्राम महत्तर कहा गया है।*** रामायण में ग्राम के प्रधान को ग्रामीण कहा गया है। गांव में कई प्रकार के अधिकारियों का उल्लेख है जिसकी नियुक्ति के बारे में मनु के कहा है कि इनकी नियुक्ति राज्य द्वारा की जाती थी। राज्य के साथ ग्राम के अधिकारियों का निकट का सम्पर्क होता था। ग्राम का प्रमुख ग्रामणी का गांव में सबसे ऊंचा स्थान था। वैदिक काल में ग्रामणी राज्य के अन्य अधिकारियों के साथ सहयोग से पूरा करता था।

* उद्धत, श्री हर्ष देव मालवीय, विलेज पंचायत इन इन्डिया, पेज 25,
**उद्धृत, उपरोक्त, पेज 43. ***ग्रामघोष महत्तराः।। (अयोध्या काण्ड, श्लोक 17 सर्ग 116)

मौर्य कालीन समाज व्यवस्था के सम्बन्ध में कौटिल्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में व्यापक रूप से वर्णन किया है। डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है कि उस समय ग्राम अपनी व्यवस्था करने के लिए काफी हद तक स्वतन्त्र था। प्रत्येक ग्राम में एक सभा होती थी जिसमें ग्राम से सम्बन्धित सभी बातों पर विचार किया जाता था। यहां न्याय कार्य के साथ-साथ ग्राम के विकास तथा अन्य बातों पर भी विचार किया जाता था। कौटिल्य के अनुसार ग्रामणी ग्राम की सभा के सहयोग से दण्ड, न्याय तथा कृषि व्यवस्था सम्बन्धी कार्य करता था। कौटिल्य ने लिखा है :—

ग्रामिकस्य ग्रामादस्तेन पारदारं निरस्यतः चतुर्विंशति पाणोदंडः।
ग्रामस्योत्तमः
कर्षकस्य ग्राममभ्युपेत्य अकुर्वतो ग्राम एवात्ययं हरेत्। कर्माकरणे
कर्मवेतन द्विगुणं हिरण्यदानं प्रत्यशव्दिगुणं भक्ष्यपेयदाने च प्रवहणेपु
द्विगुण मंशंदध्यातः*

बुद्धकालीन ग्रामः—बौद्ध-कालीन समाज व्यवस्था में ग्राम व्यवस्था का जो चित्र सामने आता है उससे उस काल की स्थिति का अन्दाजा लगता है। बौद्ध-कालीन साहित्य में इस बारे में अच्छी जानकारी मिलती है। जातक इस बारे में मौलिक साहित्य है। बौद्ध साहित्य में राज्य व्यवस्था को ग्राम, निगम, श्रेणी आदि के रूप में विभाजित किया है। इस युग में भारत के ग्राम की प्रजा अपने धन्धे के अनुसार विभिन्न समूहों में बंटी हुई थी। प्रत्येक छोटा समूह अपने भीतरी शासन में पूरी तरह स्वतंत्र था। ये समूह ग्राम, श्रेणी और निगम शासन की सबसे छोटी स्वतंत्र इकाइयां थी। जातक में एक ग्राम में एक हजार तक परिवार के रहने का उल्लेख किया गया है। ये परिवार एक दूसरे से निकट रूप में जुड़े रहते थे, मानो एक ही विशाल परिवार के सदस्य हों। प्रत्येक गांव का अपना क्षेत्र होता था जिसकी सीमा में गांव के कृषकों की खेती की जमीन होती थी। गांव के लोग अपनी आवश्यकता को देखते हुए जंगल साफ कर गांव की सीमा का विस्तार भी करते थे। प्रसिद्ध बौद्ध साहित्य धम्मपद में कृषि की व्यवस्थित पद्धति और सामूहिक सिचाई व्यवस्था का उल्लेख है। गांव की सभा सिंचाई के लिए तालाब, कुंआ और ग्राम की सीमा में नहरों का निर्माण करती थी। गांव में चारागाह, जंगल सार्वजनिक सम्पत्ति थी जिसे कोई भी व्यक्ति खरीद-बेच नहीं सकता था।

* कौटिल्य, अर्थशास्त्र, उद्धृत, श्री हर्षदेव मालवीय, विलेज पंचायत इन इण्डिया, पेज 75.

प्राचीन भारत में ग्राम व्यवस्था की जो परम्परा कायम हुई, वह कुछ परिवर्तनों के साथ आगे के कालों में चलती आयी। गुप्त एवं मौर्यकाल सुन्दर शासन व्यवस्था का प्रतीक था। इन कालों में ग्राम एक इकाई के रूप में गठित थी। गाँव के कृषक एवं कारीगर अपनी कुशलता एवं व्यवस्था के लिए स्वतंत्र थे। राज्य इनकी यथा-संभव मदद करता था, लेकिन वास्तव में तो इनमें स्वयं अपनी मदद करने की क्षमता थी। कृषि और उद्योग परस्पर पूरक थे, जिस पर समाज का जीवन आधारित था। कौटिल्य अर्थशास्त्र में राज्य संस्था का जो चित्र हम पाते हैं, उससे यह स्पष्ट होता है कि मौर्य साम्राज्य भारत के विभिन्न जनपदों और उनके अन्तर्गत ग्रामों, श्रेणियों, नगरों के स्तरों पर खड़ी रचना थी जो उनकी प्रजा के स्वेच्छाप्रदत्त सहयोग से चलती थी। मौर्य युग के वाद सातवाहन युग में ग्रामव्यवस्था पहले के अनुरूप चलती रही। इस काल में राजा के परिवर्तन के कारण व्यवस्था में थोड़ा परिवर्तन आया परन्तु ग्राम व्यवस्था का मूल वही रहा जो कि परम्परा चलती आ रही थी। प्रत्येक ग्राम अपनी व्यवस्था में स्वतंत्र था और गाँव का ग्रामणी या नेता गाँव की सभा के सहयोग से पूरे गाँव की भलाई का कार्य करता था। वह ऐसे कार्य में संलग्न रहता था जिससे पूरे ग्राम का कल्याण हो। जाति व्यवस्था की संकीर्णता का अभाव था, इस कारण सामाजिक भेदभाव नहीं था। किसी भी काम में लगा व्यक्ति समान सामाजिक दर्जा पाता था। व्यवस्था या विकास सम्बन्धी निर्णय एवं उसकी पूर्ति किसी एक व्यक्ति का प्रयास न होकर पूरी सभा के निर्णय द्वारा होता था। साथ ही साथ पूरे गाँव का उसमें सहयोग मिलता था। यही कारण है कि उस काल में श्रमदान के महत्व को स्वीकार किया गया है। श्रमदान आर्थिक विकास में पूँजी एवं श्रम दोनों की भूमिका निभाती थी। ग्राम में जो भी काम करना होता था, ग्राम का प्रत्येक नागरिक उसमें योग देता था।

मध्यकाल में प्राचीन ग्राम व्यवस्था का ह्रास होता गया। इस काल का प्रारम्भ सन् 550 से माना जाता है। इस काल में प्राचीन व्यवस्था अस्त-व्यस्त होती गयी। ग्राम की पंचायतें, सभा एवं अन्य व्यवस्था का ह्रास होने से ग्राम व्यवस्था का प्राचीन रूप कायम नहीं रह सका। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्री के. पी. जायसवाल ने लिखा है, 550 ई० से हिन्दू इतिहास पिघलकर उजले चरित्र मात्र रह जाते हैं—राष्ट्रीय या सामूहिक डोर में न पिरोये हुए अकेले रत्न। यद्यपि कालांतर में ग्राम व्यवस्था का प्राचीन रूप वदलता गया। परन्तु भारतीय ग्राम की मूल विशेपता में पुराने तत्व कायम रहे। राज्य एवं राजा के परिवर्तन के साथ-साथ ग्राम के मुखिया या व्यवस्थापक वर्ग में परिवर्तन होता गया। उनकी

कार्य पद्धति, स्वभाव में भी फर्क आता गया। मराठा युग में यह परिवर्तन साफ-तौर पर देख सकते हैं। इस समय ग्राम के मुखिया को पाटिल कहते थे। यह ग्राम व्यवस्था, कर वसूली एवं न्याय के लिए जिम्मेदार था। हम देखते हैं कि वाद के युगों में ग्राम का मुखिया का काम सीमित हो गया।

प्राचीन व्यवस्था का ह्रास :—मुगल काल की मुख्य चिन्ता जमीन और उसकी लगान थी। भूमि राजकीय खजाना भरने का मुख्य स्रोत थी। इस कारण मुगल साम्राज्य ने ऐसे कई प्रयास किये जिससे राजस्व की वृद्धि हो। अकबर ने भूमि व्यवस्था में पर्याप्त परिवर्तन किया। उसके साथ-साथ शासक जाति को अधिक सुविधा मिले इसका भी प्रयास किया गया। यही कारण है कि मुगल राजा एवं छोटे-छोटे जमींदारों की संख्या काफी बढ़ गयी। इन लोगों की मुख्य मंशा कर वसूलना और समाज में शान्ति व्यवस्था कायम रखना था। परम्परा से चली आ रही ग्राम व्यवस्था के प्रति इनकी रुचि कम थी। यही कारण है कि प्राचीन काल से चली आ रही ग्राम संस्था धीरे-धीरे मुरझाती गयी। मुगल काल में राज्य व्यवस्था में परिवर्तन का प्रभाव ग्राम व्यवस्था पर भी पड़ा। गाँव में मुस्लिम शासन पद्धति का जो प्रभाव पड़ा उस कारण ग्राम स्तर की संस्थाएँ शिथिल हो गयीं। मुगलकाल में ग्राम के रीति-रिवाज, परम्परायें तथा आन्तरिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने की नीति कम रही, लेकिन इस काल में विकेन्द्रित व्यवस्था के स्थान में केन्द्रित शासन व्यवस्था पर अधिक जोर दिये जाने के कारण भारत की विकेन्द्रित ग्राम व्यवस्था की प्राचीन व्यवस्था ढीली होने लगी।

अंग्रेजी साम्राज्य के आने के वाद तो केन्द्रित शासन व्यवस्था का नया दौर प्रारम्भ हो गया जिसने परम्परागत व्यवस्था की जड़ें हिला दीं।

दूसरा अध्याय

गांधी की कल्पना का ग्राम स्वराज्य

भारत में पंचायतीराज की स्थापना निश्चय ही लोकतंत्र की दिशा में भारतीय चिंतन की प्रौढ़ता का लक्षण है । पंचायतीराज पर सामान्यतया दो दृष्टियों से विचार किया जाता है । एक विचार के अनुसार वह शासन की प्रशासनिक इकाई है और दूसरे विचार के अनुसार स्थानीय स्वशासन की स्वायत्त इकाई । गांधीजी ने ग्रामपंचायत को मात्र प्रशासनिक इकाई नहीं माना, इसलिए पंचायतीराज की वर्तमान कल्पना केवल प्रशासन की एक सुविधाजनक प्रणाली भर नहीं हो सकती है । उसे तो एक नयी समाज व्यवस्था की रचना की ठोस योजना बनना है ।

गांव का स्थानः—भारत में पंचायतीराज यहां की समस्याओं का स्वाभाविक परिणाम है । देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं की जो स्थिति है उसमें पंचायतीराज स्वाभाविक रूप से उसके समाधान के रूप में सामने आता है । हमें जिस प्रकार की समाज रचना विरासत में मिली है और उसकी जो समस्यायें हैं उसे यदि वास्तविकता के साथ समझा जाय तो पंचायतीराज की आवश्यकता के बारे में किसी प्रकार के तर्क की जरूरत नहीं है । भारतीय समाज की समस्याओं को जिन लोगों ने समझने का प्रयास किया है उनमें गांधीजी की पकड़ सबसे मजबूत है । गांधीजी ने भारतीय समाज की समस्याओं को सही ढंग से समझा और समस्याओं के अनुसार उसका समाधान प्रस्तुत किया । भारत गांव में बसता है यह कथन आज भी उतना ही सही है जितना पहले था । शहरी आकर्षण के बावजूद आज भी करीब 82 प्रतिशत जनसंख्या गांव में रहती है । जब तक गांव की समस्या नहीं सुलझती तब तक भारतीय समाज की समस्या नहीं सुलझेगी ।

गांधीजी ने गांव की समस्याओं को जिस रूप से समझा यह अध्ययन का विषय है । ग्राम पंचायत के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक परिपेक्ष में गांधीजी ने गांव की समस्याओं को समझा है । गांधीजी की कल्पना का ग्राम स्वराज्य का

क्या चित्र होगा, इसे जानने के पहले ग्राम समाज की मौलिक समस्याओं पर संक्षेप में विचार करना उपयोगी होगा ताकि यह स्पष्ट हो सके कि पंचायती-राज ग्राम समस्याओं के समाधान हेतु क्यों आवश्यक है ?

गांव की समस्याओं का सम्बन्ध वहां के सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों से जुड़ा है। गांव की समस्याओं को मुख्यत: दो दृष्टि से देखा जा सकता है। प्रथम, सामाजिक सम्बन्धों को लेकर उत्पन्न होने वाली समस्यायें। दूसरा, आर्थिक सम्बन्धों को लेकर उत्पन्न होने वाली समस्यायें। एक स्थान पर पीढ़ी दर पीढ़ी रहने के कारण एक खास प्रकार का सामाजिक सम्बन्ध विकसित होता है। प्राचीन काल से भारत में जिस प्रकार की समाज व्यवस्था चली आ रही है उसमें ग्रामीण जीवन में आपसी सम्बन्धों में निकटता रहती है। एक समय था जबकि एक स्थान पर रहने के कारण गांव में परिवार के रूप में भावनात्मक एकता थी। पाश्चात्य एवं औद्योगीकरण के प्रभाव के कारण ग्राम स्तर पर सामाजिक सम्बन्धों में दुराव बढ़ता गया। आज गांव के सामने मुख्य समस्या उसे एक समुदाय के रूप में संगठित करने की है।

गांव की समस्या और पंचायत:—आज स्थिति यह है कि परिवार में आपसी व्यवहार में एक दूसरे से निकटता के बजाय दूरी बढ़ती है। गांव में जिस प्रकार का आपसी सद्भाव था, वह कम हो रहा है और गांव-परिवारों का समूह मात्र रह गया है। परिवार में आर्थिक तत्व तथा स्वार्थ को लेकर विघटन को बल मिलता, जिससे संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। गांव स्तर पर जाति, धर्म, राजनीति एवं आर्थिक स्वार्थ के कारण आपसी तनाव बढ़ता है। पैसे और साधन की दृष्टि से गांव का एक बड़ा भाग इतना खोखला होता जा रहा है कि उनमें जीव्य शक्ति समाप्त प्राय: होती जा रही है। गांव में श्रम, बुद्धि एवं पूंजी का पलायन होता जा रहा है। गांव एक ग्राम परिवार के रूप में विकसित हो, इसके लिए आवश्यक है कि गांव में बसने वाले सभी सामाजिक एवं आर्थिक अन्तर्विरोधों को कम किया जाय ताकि सभी स्तर के लोग एक स्थान पर आकर बैठें।

अनेक परिवर्तनों एवं एकाकीपन के बावजूद प्रत्येक गांव एक इकाई के रूप में है। गांव एक निश्चित भू-भाग पर बसा होता है। कुछ गांव काफी छोटे होते हैं और कई टोलों से मिलकर एक पूर्ण गांव बनता है। गांव के सामने एक गांव की स्वायत्तता को कायम रखने एवं उसे संगठित करने की समस्या है। आज ग्राम स्तर पर स्वायत्तता का कोई व्यवस्थित स्वरूप सामने नहीं है। जब तक पूरा गांव एक इकाई के रूप में संगठित नहीं होगा तब तक पंचायतीराज की भावना का

विकास सम्भव नहीं। यहाँ स्वायत्तता से यह तात्पर्य नहीं है कि प्रत्येक गांव पास-पड़ौस के गांव से विरोध रखेगा। गांधीजी ने इसे समुद्र की लहरों के ढंग की संरचना कहा है। गांव स्तर पर बना समुदाय एक छोटी इकाई होती है जिसमें पंचायतीराज की कल्पना साकार होती है। यदि ग्राम स्तर पर स्वायत्तता का विकास हो जाय तो ग्राम स्वराज्य की दिशा में आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

गांव के सामने सामाजिक आर्थिक विकास, तकनीकी समस्या दिन प्रतिदिन विकट होती जा रही है। ग्रामीण विकास की चिंता बाहर की ऐजेंसी द्वारा की जाती है। सरकार प्रधान आर्थिक विकास की योजना में गांव के लोगों की रुचि कम होती है। गांव के सामने एक मुख्य समस्या यह है कि गांव के सभी स्तर के लोगों की विकास की योजना कैसे बने ? गांव के आर्थिक विकास में सबका साथ हो एवं स्थानीय साधनों का विकास हो, इसके लिए आवश्यक है कि गांव के लोग स्वयं विकास की योजना बनायें। पंचायत के माध्यम से आर्थिक विकास को ग्रामाभिमुख बनाया जा सकता है। इस समस्या के साथ तकनीक को स्वीकारने की समस्या भी है। ग्रामीण श्रमिक की कुशलता की जो स्थिति है उसमें आधुनिक एवं केन्द्रित तकनीक को स्वीकारना उनकी बौद्धिक पकड़ के बाहर है। गांव में तकनीकी पकड़ की सीमा को स्वीकार करते हुए इस बात का प्रयास किया जाना चाहिए कि गांव की प्रकृति, तकनीकी क्षमता, गांव में पूंजी की क्षमता एवं श्रमशक्ति की मात्रा के अनुसार तकनीक का विस्तार किया जाय। इस समस्या को ध्यान में रखकर गांधीजी ने गांव के लोगों को उनके घरों में ही रोजगार देने की बात कही। विकेन्द्रित एवं स्वावलम्बी समाज एवं अर्थरचना को स्वीकार कर ग्रामीण समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। इसे एक शब्द में ग्रामाभिमुख समाज एवं अर्थरचना कह सकते हैं। पंचायत इस व्यवस्था का आधार होगा। पंचायतीराज ग्राम की समस्याओं को समग्र दृष्टि से देखता है और उन समस्याओं का समाधान भी समग्र रूप में खोजने का प्रयास करता है। गांधीजी ने ग्रामीण समस्या को जिस रूप में समझा है उसमें पंचायतीराज स्वाभाविक ढंग से उसका समाधान प्रस्तुत करता है।

गांधीजी और ग्राम:—गांधीजी ने गांव के महत्व को समझा और उसकी समस्याओं के समाधान की बात कही। गांधीजी भारतीय समाज का मूल ग्राम समाज मानते हैं जो कि हमें विरासत में मिला है। उनकी राय में "गांवों की सेवा करने से ही सच्चे स्वराज्य की स्थापना होगी" अगर गांव नष्ट हो जाय तो हिन्दुस्तान भी नष्ट हो जायगा। वह हिन्दुस्तान ही नहीं रह जायगा, दुनिया

में उसका 'मिशन' ही खत्म हो जायगा। गांव की मौजूदा परिस्थिति को लेकर गांधीजी के मन में गांव के लिए जो स्थान था उसे इन्होंने इस रूप में व्यक्त किया है—सच तो यह है कि हमें गांव वाला भारत और शहरों वाला भारत इन दोनों में से एक को चुन लेना है। देहात उतने ही पुराने हैं जितना कि यह भारत पुराना है। गांवों का शोषण खुद एक संगठित हिंसा है। अगर हमें स्वराज्य की रचना अहिंसा के पाये पर करनी है तो गांवों को उनका उचित स्थान देना होगा, यह उचित स्थान उन्होंने ग्राम स्वराज्य के रूप में देखा।

गांधीजी की कल्पना का ग्राम स्वराज्य का क्या चित्र होगा, इस प्रश्न के उत्तर में अपनी कल्पना को सूत्र रूप में उन्होंने इस रूप में व्यक्त किया है—ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा जो अपनी अहम् जरूरतों के लिये अपने पड़ौसी पर भी निर्भर नहीं रहेगा और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिये, जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हर एक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिये कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास इतनी फाजिल जमीन होनी चाहिये जिसमें ढोर चर सकें और गांव के बड़ों व बच्चों के लिये मन-बहलाव के साधन और खेलकूद वगैरा का बन्दोबस्त हो सके। इसके बाद भी जमीन बची तो उसमें वह ऐसी उपयोगी फसलें बोयेगा जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके। यों वह गांजा, तम्बाकू, अफीम वगैरा की खेती से बचेगा। हरएक गांव में गांव की अपनी एक नाटक-शाला, पाठशाला और सभा-भवन रहेगा। पानी के लिये उसका अपना इन्तजाम होगा, वाटर वर्कस होंगे जिससे गांव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा।*

कुओं या तालाबों पर गांव का पूरा नियंत्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दर्जे तक शिक्षा सबके लिये लाजमी होगी। जांत-पांत और क्रमागत अस्पृश्यता जैसे भेद आज हमारे समाज में पाये जाते हैं, वैसे इस ग्राम समाज में बिलकुल न रहेंगे।......गांव की रक्षा के लिये ग्राम सैनिकों का एक ऐसा दल रहेगा, जिसे लाजमी-तौर पर बारी-बारी से गांव के चौके (पहरे) का काम करना होगा।

ग्राम स्वशासन—गांव का शासन चलाने के लिये पांच आदमियों की एक पंचायत चुनी जायेगी। इन पंचायतों को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे। चूंकि इस ग्राम स्वराज्य में आज के प्रचलित अर्थों में सजा या

---

* गांधीजी; हमारे गांवों का पुनर्निर्माण; पेज 3, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 1953.

दंड का कोई रिवाज नहीं रहेगा, इसलिये यह पंचायत अपने कार्यकाल में स्वयं ही धारा सभा, न्याय सभा और कारोबारी सभा का सारा काम संयुक्त रूप से करेगी। इस ग्राम शासन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधार रखने वाला सम्पूर्ण प्रजातंत्र काम करेगा। व्यक्ति अपनी इस सरकार का निर्माता भी होगा। इसकी सरकार और वह दोनों अहिंसा के नियम के वश होकर चलेंगे।*

गाँधीजी ने जिस प्रकार के समाज की कल्पना की है उसकी पूर्ति पंचायतीराज से सम्भव है। गाँव-गाँव में स्वराज्य को पहुंचाने के लिए आवश्यक है कि इसे सक्षम बनाया जाय और अपने पैरों पर खड़ा होने का अवसर प्रदान किया जाय। गाँधीजी ने कहा है—"हिन्दुस्तान के सच्चे लोकराज में शासन की इकाई गाँव होगा। अगर एक गाँव भी पंचायतराज चाहता है तो कोई उसे रोक नहीं सकता। सच्चा लोकराज केन्द्र में बैठे हुए बीस आदमियों से नहीं चल सकता। उसे हर गाँव के लोगों को नीचे से चलाना होगा।"** पंचायत की यह व्यवस्था हमें विरासत में मिली है जिसकी छाप गाँव पर देखी जा सकती है। "पंचायत हमारा बड़ा पुराना और सुन्दर शब्द है, उसके साथ प्राचीनता की मिठास भरी हुई है। उसका शाब्दिक अर्थ है गाँव के लोगों द्वारा चुने हुए पांच आदमियों की सभा हो। यह उस पद्धति का सूचक है, जिसके द्वारा भारत के बेशुमार ग्राम लोक-राज्यों का शासन चलाता था।"***

ग्राम का समग्र विकास हो, इसके लिए आवश्यक है कि पंचायतीराज को किसी भी संकीर्ण भावना से मुक्त किया जाय। सामाजिक, आर्थिक संकीर्णता से मुक्ति के साथ-साथ सभी स्तर पर समानता का प्रवेश हो, इसका प्रयास ग्राम पंचायत में किया जाना चाहिए। क्षेत्रीय संकीर्णता का पंचायतीराज में कोई स्थान नहीं होगा। पूर्ण ग्रामस्वराज्य की कल्पना को मूर्तरूप देने से ही सच्ची आजादी प्राप्त हो सकती है। यहाँ आजादी से मतलब है ग्राम लोगों की आजादी, उन पर हुकूमत करने वालों की आजादी नहीं। ग्राम समाज का व्यापक चित्र प्रस्तुत करते हुए गांधीजी ने लिखा है—"ऐसा समाज अनगिनत गांवों का बना होगा। उसका फैलाव एक से ऊपर एक के ढंग पर नहीं बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा। जिन्दगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वह तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी,

* गांधीजी, उपर्युक्त पेज 5, 6

** उपर्युक्त पेज 72

*** उपर्युक्त पेज 63

ग्रौर व्यक्ति इनका मध्य विन्दु होगा ।" गांधीजी ने इस कल्पना को मूर्तरूप देने के लिए कहा है, ग्रगर हिन्दुस्तान के हरएक गांव में कभी पंचायतीराज कायम हुग्रा तो मैं ग्रपनी इस तस्वीर की सच्चाई सावित कर सकूंगा, जिससे सवसे पहला ग्रौर सवसे ग्राखिरी दोनों वरावर होंगे या यों कहें—न कोई पहला होगा, न ग्राखिरी ।"*

"पंचायतीराज लोकतांत्रिक व्यवस्था की नींव है । वह जिस सीमा तक मजबूत होगी, देश में लोकतन्त्र की जड़ें उसी सीमा तक गहरी होंगी । इसलिए ग्रावश्यक है जनता में स्वयं के प्रति जागरूकता ग्राये ग्रौर शासन के प्रति सजग रहे । ग्राम पंचायत के जरिए वह ग्रपना शासन स्वयं सम्भाल ले ग्रौर इस प्रकार पूरे देश की शासन व्यवस्था पर नजर रखें । पंचायतीराज में नागरिक ग्रपनी ग्राजादी की रक्षा के विषय में सजग होंगे ।" सत्ता पर स्वामित्व जनता का ही है ग्रौर होना चाहिए । स्वराज्य का ग्रर्थ यह है कि जनता सरकार के नियन्त्रण से, सरकार विदेशी हो या स्वदेशी, मुक्त होने के लिए लगातार प्रयत्न करती रहेगी । जिस स्वराज्य में लोग ग्रपने जीवन के छोटे-छोटे कार्यों के लिये भी सरकार का मुंह ताका करें, वह स्वराज्य किसी काम का नहीं होगा ।** इस प्रकार गांव वाहरी संस्था या व्यक्ति के दवाव से मुक्त होगा । इस मुक्ति के प्रयास में ग्रामपंचायत की शक्ति वढ़ेगी । ऐसे पंचायतीराज में देश में वड़े ग्रौर छोटे के वीच सामाजिक, ग्रार्थिक, राजनीतिक ग्रौर धार्मिक यानी हर तरह की समानता होगी । प्रत्येक गांव इस दिशा में वढ़ने का प्रयास करेगा ।

गांधीजी ने विकेन्द्रित समाज रचना का एक चित्र प्रस्तुत किया जिसकी मौलिक इकाई गांव है । इस विकेन्द्रित एवं स्वशासित समाज रचना के विचार को संक्षेप में इस रूप में रख सकते हैं :—

(1) गांधीजी की दृष्टि में ग्राम शासन की सवसे मौलिक ग्रौर शक्तिशाली इकाई है ।

(2) प्रशासनिक शक्ति का केन्द्र गांव है ग्रौर इसके ऊपर की प्रशासनिक इकाइयों की शक्ति क्रमशः कम होती जाती है । तात्पर्य यह है कि गांव ग्रपनी व्यवस्था एवं प्रशासन में पूरा ग्रधिकार रखता है ग्रौर उस पर वाहर का दवाव कम रहता है ।

---

* गांधीजी, उपर्युक्त, पेज 70

** गांधीजी, उपर्युक्त

(3) गांव को यथासम्भव स्वावलम्बी स्थिति तक पहुंचाने का प्रयास करना चाहिए एवं क्षेत्रीय स्तर पर अधिकतम स्वावलम्बन हो, इसके लिए आवश्यक है कि स्थानीय साधनों, प्राकृतिक एवं मानवीय श्रम का पूरा-पूरा उपयोग किया जाय ।

(4) स्थानीय स्तर पर ग्राम एवं क्षेत्र को स्वतन्त्रता होनी चाहिए । लोकतान्त्रिक मूल्यों को मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए ।

(5) कृषि एवं उद्योग दोनों का समन्वय किया जाना चाहिए । भारतीय परिस्थिति में दोनों एक-दूसरे के पूरक हो इसके लिए यह प्रयास किया जाना चाहिए कि कृषि के साथ उद्योग जुड़ें । कृषि एवं उद्योग में मशीन एवं शक्ति का उपयोग इस बात को ध्यान में रखकर कर किया जाना चाहिए कि उससे बेकारी न बढ़े और न ही शोषण हो । उत्पादन में सामुदायिक व्यवस्था का विकास किया जाय ।

(6) बड़े एवं केन्द्रित उद्योगों को छोटे एवं विकेन्द्रित उद्योगों की मदद के लिए स्थापित किया जाना चाहिए । ऐसी स्थिति नहीं आनी चाहिए जिससे बड़े एवं केन्द्रित उद्योग अपनी तकनीकी विशालता के कारण छोटी एवं विकेन्द्रित तकनीक को समाप्त कर दें ।

(7) उपरोक्त बातों की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि पंचायतीराज व्यवस्था को मजबूत किया जाय ।

तीसरा अध्याय

स्वतंत्रता आन्दोलन और पंचायत

स्थानीय शासन की पृष्ठभूमि :– स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान आन्दोलन में लगे लोग, समाज सेवक एवं राजनैतिक दलों ने भारतीय समाज रचना पर समय-समय पर विचार किया। राजनीतिक स्वाधीनता के इस आन्दोलन में देश की समाज व्यवस्था, अर्थरचना एवं राजनीतिक व्यवस्था के विविध पहलुओं पर विचार किया जाता रहा है। आन्दोलन का नेतृत्व करने वाली प्रमुख राजनीतिक पार्टी कांग्रेस थी। कांग्रेस दल ने ग्रामीण व्यवस्था के बारे में समय समय पर व्यापक रूप से विचार किया। स्वाधीनता आन्दोलन में गांधीजी के आने के बाद ग्रामीण समस्याओं पर अधिक गहराई से विचार किया जाने लगा। वैसे गांधी के पूर्व भी कांग्रेस ने इस विषय पर विचार किया। श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने स्थानीय शासन व्यवस्था के सन्दर्भ में पंचायतों पर विचार किया था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने समय-समय पर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट (Local Self Government) के बारे में प्रस्ताव पास किये। इन प्रस्तावों को उसकी प्रवृत्ति के अनुसार मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। एक, ऐसे प्रस्ताव जो कि ब्रिटिश शासन पद्धति को "माडल" मानकर प्रस्तुत किये गये या स्वीकार किये गये। इस प्रकार के प्रस्तावों में जिला एवं उससे नीचे की इकाइयों को अधिक व्यवस्थित किया जाय, इस पर जोर दिया गया। श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने इस प्रकार के प्रस्तावों पर अधिक जोर दिया। सन् 1909 में रायल कमीशन ने लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट के बारे में सुझाव रखा। स्थानीय शासन को अधिक व्यवस्थित करने की दृष्टि से स्थानीय निकायों को कार्य सौंपने का प्रस्ताव रखा गया। परन्तु स्थानीय निकायों को सरकारी अधिकार एवं विभाग के अधीन रखा गया। जिला बोर्ड, नगर परिषद, जैसी व्यवस्था को विकसित करने पर जोर दिया गया। सन् 1909 की कांग्रेस में इस प्रकार के प्रस्ताव को मूर्त रूप देने का प्रस्ताव किया गया। अ० भा० कांग्रेस ने, बाद के वर्षों में, ग्राम पंचायत की परम्परागत पद्धति को अपनाने पर

वल दिया। इस प्रकार के प्रस्तावों में भारतीय परम्परा के अनुसार प्रशासन की शक्ति ग्राम को सौंपने पर वल दिया गया। अ० भा० कांग्रेस ने इस प्रकार के प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें गांव को स्वायत्त एवं स्वशासित इकाई के रूप में विकसित करने पर वल दिया गया। डा० एनीवेसेन्ट, विपिन चन्द्र पाल, सी० आर० दास आदि ने ग्रामपंचायत को भारतीय परम्परा के अनुसार स्थापित करने पर वल दिया। डा० एनीवेसेन्ट ने कहा—हमें नीचे की इकाई से प्रारम्भ करना चाहिये। समाज की मौलिक इकाई ग्राम है, वही व्यवस्था एवं प्रशासन की मौलिक इकाई है। उसे स्वायत्त होना चाहिये। सन् 1910 के अधिवेशन में यह आशा व्यक्त की गई थी कि सरकार शीघ्र ही पंचायतों को पर्याप्त अधिकार दिए जायेंगे।

कांग्रेस और पंचायत :– सन् 1915 में गांधीजी के स्वदेश वापस आने के वाद स्वाधीनता आन्दोलन को नयी दिशा मिली। सन् 1916 में मद्रास के अपने भाषण में सवसे पहले गांधीजी ने पंचायती व्यवस्था की स्थापना पर जोर दिया। उन्होंने माना कि भारत में स्वदेशी की भावना का विकास एवं गांव के सर्वांगीण विकास के लिए ग्रामपंचायतों को मजवूत करना जरूरी है। सन् 1917 में कलकत्ता में अ० भा० कांग्रेस का 32 वां वार्षिक अधिवेशन हुआ। डा० एनीवेसेन्ट ने इस अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा, "भारत के किसान मौजूदा भूमि व्यवस्था एवं ग्राम व्यवस्था से असंतुष्ट हैं। वे परम्परा से चली आ रही पंचायती व्यवस्था चाहते हैं। ग्रामीण स्तर पर गांव की समस्याओं को सुलझाने का अवसर मिलना चाहिये। वे पुनः पंचायत की मांग करते हैं ताकि गांव में स्वशासन स्थापित हो सके। गांव की सामाजिक एवं आर्थिक कमजोरियों को ग्राम पंचायत को पुनः स्थापित करने से ही दूर की जा सकती है। इस प्रकार स्वतंत्रता आन्दोलन में ग्राम पंचायतों की स्थापना का प्रयास करना एक मुख्य कार्यक्रम वन गया।

ब्रिटिश शासन ने समय-समय पर, अपनी प्रशासनिक सुविधा एवं राजनीतिक स्वार्थ के लिए प्रशासन को विकेन्द्रित करने का प्रयास किया। रायल कमीशन, फेमीन कमीशन आदि इस प्रकार के प्रयासों का नमूना है। परन्तु ब्रिटिश शासन ने जो भी प्रयास किये वह पंचायतीराज नहीं था। उसमें शासन जनता के हाथ में न आकर गांव के मुखिया के हाथ में आता था। गांव के प्रमुख प्रभावशाली लोगों की मदद से प्रशासन को सरल वनाना, उसका लक्ष्य था। पंचायत के नाम पर दिये गये अधिकारों में कर वसूलना, ग्राम सफाई, स्वास्थ्य का ध्यान रखना,

सड़क मरम्मत करना आदि कामों का उल्लेख किया गया था। परन्तु इन कार्यों में सामान्य-जन के सहयोग की भावना को प्रायः नजरन्दाज ही किया गया था। उसकी आलोचना करते हुए डा० ऐनीबेसेन्ट ने कहा है, "इस प्रकार की पंचायत में नियन्त्रण का मुख्य केन्द्र जिला प्रशासन को माना गया है। गांव के जनप्रतिनिधियों को सरकारी अधिकारियों के अधीन माना गया है। जन-प्रतिनिधियों की स्वयं की शक्ति विकसित नहीं होने दी गयी है। मान्टेग्यू जेम्स फोर्ड सुधार के प्रस्तावों के आधार पर ब्रिटिश सरकार ने देश के कई राज्यों में ग्रामपंचायत कानून बनाया। इन कानूनों के निर्माण के पीछे गांधीजी और स्वाधीनता आन्दोलन का दबाव का प्रभावक स्थान था। सन् 1920 से 1928 के बीच मांटेग्यू जेम्स फोर्ड सुधार के प्रस्तावों के अनुसार बंगाल, बम्बई, उत्तर प्रदेश, बिहार, बीकानेर, कोल्हापुर आदि स्टेटों में पंचायत कानून बना। विभिन्न स्टेटों में बने पंचायत कानून तो बन गये, परन्तु ये कानून पंचायतीराज की कल्पना से काफी दूर थे। ब्रिटिश शासन के अधीन ग्रामपंचायतें स्वायत्तता प्राप्त नहीं कर सकी। देश के काफी बड़े क्षेत्र में स्थानीय राजा और ब्रिटिश सरकार इन दोनों का दबाव था। कुल मिलाकर कानून बनने के बावजूद ग्रामपंचायत की स्थापना कल्पना की चीज रह गयी।

स्वाधीनता आन्दोलन में पंचायत :—स्वाधीनता आन्दोलन के नेताओं के मार्गदर्शन में पंचायत के माध्यम से ग्राम स्वराज्य स्थापना का प्रयास चालू रखा। सन् 1920 में गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन के दौरान सरकार के साथ असहयोग की बात कही। उन्होंने सरकारी अदालतों का बहिष्कार करने की बात को असहयोग का अंग बनाया। यहां तक कि वकीलों से भी बहिष्कार करने को कहा। इसके स्थान पर पंच फैसले की सिफारिश की। गांव के सभी प्रकार के विवाद गांव में आपसी पंचायत द्वारा सुलझाने को कहा। डा० राजेन्द्र प्रसाद जैसे वकीलों ने इस काम में भाग लिया। अ० भा० कांग्रेस ने इस बात का प्रयास किया कि गांव-गांव में पंचायत के विचार का प्रवेश हो और पंच निर्णय की परम्परा विकसित हो। पं० मोतीलाल नेहरू ने भी अदालत मुक्ति एवं पंचायती फैसले के लिए अपील की। यह नारा दिया कि अदालत में जो जीता, वह हारा और जो हारा, वह मरा। कांग्रेस ने गांव-गांव में पंचायतों को संगठित करने का प्रयास किया और यह बात कही कि जो व्यक्ति पंचायत के निर्णय को नहीं माने, उसका सामाजिक बहिष्कार किया जाय।

सन् 1922 में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने कहा कि अब तक हम लोग ऊपर से काम करते रहे हैं। अब हमें अपना कार्य सीधे जनता के पास से, नीचे से प्रारम्भ करना चाहिए। गांव हमारे कार्य का मध्य बिन्दु होना चाहिए।

भारत का सामान्य आदमी गांव में रहता है। अतः गांव-गांव में संगठन मजबूत करना होगा। गांव की समस्याओं को हाथ में लेना होगा और उसके समाधान के लिए गांव वालों को तैयार करना चाहिए। गांव के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए पंचायतों का निर्माण करना चाहिए। अ० भा० कांग्रेस के 37वें अधिवेशन (1922) में अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए देशबन्धु चितरंजन दास ने स्थानीय शासन को अधिक मजबूत बनाने पर बल दिया और कहा कि ग्राम स्तर पर स्वायत्तता प्रदान किया जाना चाहिए। गांधीजी ने पंचायती व्यवस्था पर बराबर जोर दिया। 28 मई, 1931 के यंग इन्डिया में गांधीजी ने लिखा कि पंचायत एक सुन्दर व्यवस्था है जो कि हमें ऐतिहासिक विरासत में मिली है। अ०भा० कांग्रेस ने पंचायत की स्थापना का जो प्रारम्भिक प्रयास किया उसमें खास सफलता नहीं मिली, इसका मुख्य कारण यह था कि ब्रिटिश शासन के अधीन इसकी स्थापना कठिन थी। लगान, भूमि व्यवस्था, न्याय प्रबन्ध, प्रशासन आदि की कठिनाईयों के कारण वह सम्भव नहीं हो सका। फिर भी पंचायत की स्थापना का वातावरण बनाना कांग्रेस का एक कार्यक्रम रहा।

पंचायत राष्ट्रीय चिंतन का मुख्य विषय बन गया। गांधीजी ने पंचायत को एक जीवन पद्धति के रूप में स्वीकार किया और पंचायतीराज भारतीय समाज में पूर्ण स्वराज्य का प्रतीक बन गया। समाज रचना का आधार पंचायत को माना गया। सन् 1924 में बेलगांव में अ० भा० कांग्रेस का 39वां अधिवेशन हुआ। अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए गांधीजी ने स्वराज्य का बारह-सूत्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इस भाषण में उन्होंने गांव की व्यवस्था पर प्रकाश डाला। गांधीजी ने भारतीय समाज रचना और सच्चे स्वराज्य का जो चित्र प्रस्तुत किया उसमें पंचायतीराज की बात कही और गांव को स्वायत्त एवं पूर्ण इकाई माना*। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान अ० भा० कांग्रेस, उसके नेताओं ने गांधीजी की प्रेरणा से ग्रामपंचायतों की स्थापना का प्रयास किया।

संविधान का निर्माण और पंचायत :—पंचायत स्वाधीनता आन्दोलन के कार्यक्रमों में प्रमुख स्थान रखता है। स्वाधीनता आन्दोलन में पंचायत के महत्व को स्वीकार किया गया था। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद पंचायतीराज की इस कल्पना को मूर्तरूप देने का मौका आया। 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतन्त्र

*देखें, अध्याय दो

हुआ। भारतीय संविधान का निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ और संविधान सभा में देश भर के जनप्रतिनिधि शामिल हुए। यहां यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि गांधीजी संविधान सभा में नहीं थे। प्राप्त तथ्यों से इस बात की पुष्टि होती है कि प्रारम्भ में गांधीजी को इस संविधान के बारे में विस्तृत जानकारी भी नहीं थी। संविधान के प्रथम ड्राफ्ट में पंचायत का उल्लेख न होना एक दुःखद घटना थी। देश के गणमान्य नेता और स्वयं गांधीजी जिस प्रकार की ग्राम व्यवस्था, पंचायतीराज की बात समय-समय पर करते आये थे उसका उल्लेख भारतीय संविधान के प्रथम ड्राफ्ट में नहीं होने के कारण संविधान सभा में असंतोष व्याप्त हुआ। 4 नवम्बर, 1948 को ड्राफ्ट समिति के अध्यक्ष डा० बी० आर० अम्बेडकर ने भारतीय संविधान का प्रारूप संविधान सभा के सामने प्रस्तुत किया। यहां यह स्वीकार करना चाहिए कि कानून एवं संविधान के विद्वान डा० भीमराव अम्बेडकर के दिमाग में भारतीय गांव का चित्र वह नहीं था जो कि गांधीजी, डा० एनीबेसेन्ट, नेहरू जी आदि के दिमाग में था। डा० अम्बेडकर भारतीय ग्राम में अज्ञानता, सुस्ती, संकीर्णता, जातिवाद पाते हैं और यह मानते हैं कि गांव के लोग स्वयं कुछ करने की योग्यता नहीं रखते हैं। गांव में जिस प्रकार का स्वार्थ, भेदभाव और अयोग्यता है उसी का परिणाम है कि देश पिछड़ा एवं गुलाम रहा। अतः उनका मानना था कि ऐसे समाज को स्वायत्तता या पंचायत जैसी व्यवस्था का काम सौंपना ठीक नहीं।*

विद्वान डा० अम्बेडकर के मन में भारतीय ग्राम का जो चित्र था वह संविधान सभा, गांधीजी और भारतीय जनता की भावना के विपरीत था। अतः संविधान सभा में इस विचार का कड़ा विरोध हुआ। संविधान में ग्रामपंचायत को स्थान देने की मांग ने जोर पकड़ा। संविधान सभा के गणमान्य सदस्यों ने इस पर गम्भीरता से विचार किया। डा० अम्बेडकर के ग्राम एवं ग्रामपंचायत सम्बन्धी विचार को स्वीकार करना सम्भव नहीं रहा। श्री अरुण चन्द्र गुहा, श्री टी० प्रकाशम्, श्री के० संतानम् आदि ने इस बारे में बहुमूल्य सुझाव रखे जिससे कि संविधान में पंचायतीराज को पूरा स्थान दिया जा सके। इस बात पर जोर दिया जाने लगा कि भारतीय संविधान में ग्राम एवं ग्रामपंचायत को पूरा स्थान मिलना चाहिए। इसी प्रकार देश के समाचार पत्रों में भी प्रथम ड्राफ्ट में ग्रामपंचायतों की उपेक्षा किये जाने की आलोचना हुई।**

भारतीय संविधान में ग्राम व्यवस्था एवं विकास के लिए ग्रामपंचायतों की स्थापना में किस प्रकार का स्थान हो इस विषय पर संविधान सभा ने विस्तार

* देखें, श्री हर्षदेव मालवीय; पंचायतीराज इन इन्डिया, पेज 247–48.

** देखें, श्री हर्षदेव मालवीय, उपर्युक्त पेज 260.

से विचार किया। संविधान सभा के सदस्य श्री एच० वी० कामत, श्री के० संतानम्, श्री टी० प्रकाशम् आदि ने भारतीय जनता एवं जन-नेता की भावना एवं आवश्यकता के अनुसार संविधान में ग्रामपंचायत को स्थान देने का प्रस्ताव रखा। 19 नवम्बर, 1948 को संविधान सभा ने संविधान के नीतिनिर्देशक तत्वों पर विचार प्रारम्भ किया। 22 नवम्बर को श्री के० संतानम् ने संविधान में नया आर्टिकल जोड़ने का प्रस्ताव रखा जिसमें राज्य को ग्रामपंचायत स्थापना एवं उसे पर्याप्त अधिकार प्रदान करने की बात कही गयी। ग्रामपंचायत पर हुए विचार-विमर्श एवं प्रक्रिया को देखते हुए डा० अम्बेडकर ने भी संविधान में ग्रामपंचायत को स्थान देना स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार भारतीय संविधान के आर्टिकल 40 के भाग (4), जो कि राज्य के नीतिनिर्देशक तत्व है, को जोड़ा गया। संविधान के इस भाग में कहा गया कि राज्य पंचायतों का संगठन करेगा और उसे इस प्रकार के अधिकार प्रदान करेगा जिससे वह (गांव) स्वशासन के रूप में कार्य कर सके। (The State shall take steps to organise Village Panchayats and endow them with such powers and authority as may be necessary to enable them to function as units of self-government).

इस प्रकार हम देखते हैं कि काफी विचार-विमर्श के बाद भारतीय संविधान में ग्रामपंचायत के स्थान एवं महत्व को स्वीकार किया गया। ग्रामपंचायत की स्थापना एवं विकास के महत्व को स्वीकार करते हुए हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि भारतीय संविधान की रचना उस रूप में नहीं हुई, जैसी कल्पना गाँधीजी की थी। भारत जैसे विशाल एवं ग्राम प्रधान देश में ग्रामीण समस्या को भुला देना सम्भव नहीं था। भारत का विकास तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि यहाँ के गाँवों का विकास हो। यही कारण है कि उसे संविधान में भी छोटा-सा स्थान मिला। स्वतन्त्र भारत की सरकार के सामने भी ग्राम विकास की समस्या थी। आर्थिक एवं सामाजिक विकास में गाँव को किस रूप में साथ लिया जाय एवं उसके विकास की क्या पद्धति एवं माध्यम हो, यह चिंता सरकार के सामने रही है। इस चिंता का एक समाधान ग्रामपंचायतों की स्थापना माना गया। हालाँकि गाँधीजी ने ग्रामपंचायतों की जो कल्पना प्रस्तुत की, उसे न तो संविधान में स्वीकार किया गया और न ही उस संविधान को मूर्तरूप देने के लिये जनप्रतिनिधियों द्वारा बनी सरकार ने ही उचित महत्व दिया। प्रारम्भ में सामुदायिक विकास योजना के माध्यम से ग्राम विकास का प्रयास किया गया और बाद में श्री बलवन्तराय मेहता कमेटी की सिफारिशों के अनुसार देश भर में पंचायती-राज की तीन-स्तरीय व्यवस्था की गयी। यह माना गया कि इससे जनता स्व-शासन एवं विकास में अधिक भागीदार होगी और लोकतंत्र की जड़ मजबूत होगी।

चौथा अध्याय

पंचायतीराज की पृष्ठभूमि

अध्ययन दल की आवश्यकता:—भारत में पंचायतीराज की स्थापना की सिफारिश बलवन्तराय मेहता कमेटी ने की। प्रथम पंचवर्षीय योजना के साथ-साथ देश भर में सामुदायिक विकास योजना का प्रारम्भ हुआ। सामुदायिक विकास की योजना के खट्टे-मीठे अनुभव पर से योजना आयोग द्वारा ग्रामीण योजना को नयी दिशा देने की आवश्यकता महसूस की गयी। इस बात की आवश्यकता भी महसूस की गयी कि सामुदायिक विकास योजना को नया रूप दिया जाय। श्री बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति बनी जिसने सामुदायिक विकास योजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा का व्यापक अध्ययन किया। इस अध्ययन दल की सिफारिशों को "रिपोर्ट आफ द टीम फार द स्टडी आफ कम्युनिटी प्रोजेक्ट्स एण्ड नेशनल एक्सटेंशन सर्विस" के नाम से जाना जाता है।

पंचायतीराज का निर्माण इसी समिति की सिफारिशों के आधार पर हुआ। इस समिति ने तत्कालीन सामुदायिक विकास योजना के विविध पक्षों पर गहराई से अध्ययन किया। इस समिति का एक महत्वपूर्ण कार्य विभिन्न क्षेत्रों में जाकर मन्तव्य जानने का प्रयास करना था। देश के विभिन्न क्षेत्र एवं सभी स्तर के लोगों से तत्कालीन व्यवस्था एवं भावी स्वरूप के बारे में जानकारी प्राप्त की गयी। समिति ने महसूस किया कि लोकतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि शक्ति जनता के हाथ में हो। सत्ता का विकेन्द्रीकरण इस दिशा में मजबूत कदम हो सकता है। ग्राम प्रधान देश में आवश्यकता इस बात की है कि सत्ता उनके हाथ में रहे। गाँव के लोगों में इतनी क्षमता आये जिससे उनमें स्वशासन का विकास हो। पंचायतीराज की सफलता के लिए यह भी जरूरी है कि स्थानीय इकाईयों को विकास के लिए साधन प्रदान किया जाय। पंचायतीराज की सफलता के लिए नीचे लिखी बातों को आवश्यक माना जा सकता है—

1. सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो।

2. विकेन्द्रित इकाईयों को विकास के लिए पर्याप्त साधन दिया जाय।

3. अधिकार एवं कर्त्तव्य का भान कराया जाय तथा इसके लिए प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था हो।

अध्ययन दल की सिफारिशें:—अध्ययन दल ने ग्रामपंचायतों एवं अन्य स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं का अध्ययन करने के वाद माना कि प्रखण्ड स्तर की इकाई को विकास का केन्द्र विन्दु वनाना उपयोगी होगा। ग्राम अत्यन्त छोटी एवं सवसे अधिक विकेन्द्रित इकाई है। इस स्तर पर विकास की पूरी कार्यवाही करना संभव नहीं, अतः इस समिति ने तीन-स्तरीय पंचायतीराज की सिफारिश की (1) ग्रामपंचायत (2) प्रखण्ड समिति और (3) जिला परिषद्। इसमें प्रखण्ड को अधिक मजवूत वनाया गया। अध्ययन दल ने अपनी सिफारिशों में नीचे लिखी वातें मुख्य रूप से कहीं :—

1. सरकार को अपने अधिकार एवं कर्त्तव्य क्षेत्र का त्याग कर उसे नीचे की इकाईयों को सौंपना चाहिए। राज्य को नीचे की इकाईयों पर निगरानी रखनी चाहिए परन्तु उन्हें कार्य की स्वतन्त्रता देनी चाहिए।

2. प्रखण्ड स्तर पर निर्वाचित कार्यकारिणी संस्था का विकास होना चाहिए जो कि इसी स्तर पर सरकारी ऐजेन्सी (विकास प्रखण्ड) के साथ सहयोग करे।

3. इस स्तर पर गठित पंचायत समिति का अप्रत्यक्ष चुनाव ग्रामपंचायतों द्वारा किया जाना चाहिए।

4. प्रखण्ड क्षेत्र की नगरपालिकायें अपना प्रतिनिधि पंचायत समिति में भेजें।

5. पंचायत समिति का कार्य क्षेत्र व्यापक होना चाहिए—कृषि, उद्योग सभी क्षेत्रों का विकास कार्य पंचायत समिति के माध्यम से होना चाहिए।

6. क्षेत्र का भरसक सभी कार्य पंचायत समिति के जरिये होना चाहिए परन्तु यदि स्थानीय संस्थायें ऐसा नहीं कर पाती हों, तो कार्य को दूसरे को भी सौंपा जा सकता है।

7. पंचायत समिति के पास आय के निम्नलिखित स्रोत हो सकते हैं :—

(1) प्रखण्ड क्षेत्र से वसूल किया जाने वाला राजस्व का एक भाग

(2) भूमि सम्वन्धी अन्य कर

(3) व्यवसाय आदि पर कर
(4) सम्पत्ति हस्तांतरण कर
(5) लाभांश
(6) मेला, धार्मिक मेला आदि से आय
(7) वाहन कर
(8) दान एवं सहायता
(9) सरकारी सहायता

8. क्षेत्र की आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थिति को देखते हुए राज्य सरकार की ओर से पंचायत समिति को आर्थिक मदद दिया जाना चाहिए।

9. केन्द्र या राज्य सरकार से विविध योजनाओं के अन्तर्गत किया जाने वाला व्यय पंचायत समिति की सलाह से विविध ऐजेन्सियों द्वारा किया जाना चाहिए।

10. पंचायत समिति के तकनीकी कर्मचारियों को जिला स्तर के अधिकारियों की देख-रेख में काम करना चाहिए।

11. पंचायत समिति का वार्षिक बजट जिला परिषद् द्वारा स्वीकृत किया जाना चाहिए।

12. ग्रामपंचायत का गठन पूर्णतया निर्वाचन के आधार पर होना चाहिए परन्तु महिला एवं अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति से प्रतिनिधियों को सहवरित किया जाना चाहिए।

13. ग्रामपंचायत की आय के स्रोत इस प्रकार के हो सकते हैं—मकान कर, हस्तांतरण, बिजली-पानी कर, तालाब, पंचायत समिति से सहायता, फीस आदि।

14. पंचायत लगान वसूली का काम कर सकती है और इस काम के लिए उसे लगान का एक हिस्सा मिलना चाहिये।

15. पंचायत अपने क्षेत्र के लगान का एक भाग भी पंचायत समिति से प्राप्त कर सकता है।

16. जैसे-जैसे पंचायत के पास आर्थिक साधनों की वृद्धि होगी, वैसे-वैसे वह विकास के अन्य कार्य हाथ में ले सकता है।

17. कर न देने या नियमों का उल्लंघन करने वालों को, कार्यवाही में भाग न लेने या मत न देने वालों को दण्ड पंचायत दे—इस प्रकार का कानून बनाया जाना चाहिये।

18. ग्रामपंचायत का बजट पंचायत समिति द्वारा स्वीकृत किया जाना चाहिये।

19. पंचायत का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह गांव में पानी की सुविधा, रोशनी, शौचालय, स्थानीय सड़क, भूमि व्यवस्था आदि ठीक से चलाये, ये कार्य पंचायत समिति के मार्ग-दर्शन एवं सहयोग से चलना चाहिये।

20. न्याय पंचायत का कार्य क्षेत्र ग्राम या ग्रामक्षेत्र से बड़ा होना चाहिये। ग्रामपंचायतों द्वारा संस्तुत सदस्यों में से न्याय पंच की नियुक्ति तहसील या जिला न्यायाधीश द्वारा की जानी चाहिये।

21. पंचायत समिति, जिला परिषद के बीच समन्वय के लिये समिति बने जिसमें स्थानीय विधायक एवं संसद सदस्य भी शामिल हो। जिलाधीश इस समिति का सभापति हो।

22. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का यह प्रयोग सफल हो इसके लिये आवश्यक है कि तीन-स्तरीय (पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद्) संस्थाओं का पूरे जिले में विकास एक साथ किया जाय।

23. निर्वाचित जनप्रतिनिधियों को पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये ताकि वे कार्य की तकनीक एवं अन्य जानकारी प्राप्त कर सके।*

अध्ययन दल की उपरोक्त सिफारिशों के आधार पर देश भर में पंचायतीराज की योजना राज्य स्तर पर बनायी जाने लगी। यहां यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय स्तर पर मेहता कमेटी की सिफारिशों को स्वीकार किया जाने के बाद राज्यों के लिये यह कार्य आसान हो गया। परन्तु सामान्य नीति यह रही कि सिद्धांत एवं सिफारिशों को स्वीकार करते हुए राज्यों को पंचायतीराज को लागू करने की छूट होनी चाहिये। कानून राज्य स्तर पर बने एवं राज्यों ने अपनी परिस्थिति एवं अनुभव के आधार पर कानूनों में फेर-बदल भी किया। अनेक राज्यों ने अपने अनुभव के आधार पर कई नये कदम भी उठाये। कार्य की

* रिपोर्ट आफ द टीम फार द स्टडी आफ कम्युनिटी प्रोजेक्टस् एण्ड नेशनल एक्सटेंशन सर्विस; खण्ड 1–पेज 125–128; प्लानिंग कमीशन, भारत सरकार 1957.

समीक्षा, समस्याओं के समाधान के लिये राज्य स्तर पर अध्ययन समितियां भी बनीं, जिसने अनेक सुझाव दिये हैं। ज्यादातर समितियों ने कार्य की समीक्षा की और समस्या का अध्ययन कर उसके समाधान का प्रयास किया। जैसे, राजस्थान सरकार ने अपने अनुभवों के आधार पर न्याय पंचायत की व्यवस्था में परिवर्तन किया।* राजस्थान सरकार का मानना है कि न्याय पंचायत का कार्य ग्रामपंचायत द्वारा किया जाना अधिक सुविधाजनक होगा।

राजस्थान सरकार के अध्यादेश के अनुसार ग्रामपंचायत स्तर पर न्याय समिति का गठन किया जायेगा। इस समिति में चार सदस्य होंगे और सरपंच उसका अध्यक्ष होगा। यह समिति ग्रामपंचायत क्षेत्र के (अपने अधिकार सीमा के अन्तर्गत) विवादों को निपटायेगा।

पंचायतीराज की मूल कल्पना को प्रतिपादित करने का श्रेय बलवंतराय मेहता कमेटी को है। इस कमेटी की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार के विधि मंत्रालयन में न्याय पंचायत अध्ययन दल का गठन किया था।**

इस अध्ययन दल की सिफारिशों एवं उसके द्वारा तैयार की गयी रूपरेखा के आधार पर देश भर में न्याय पंचायत का संगठन किया गया। इसकी सिफारिशों के आधार पर ही न्याय पंचायत कानून बने। हालांकि अनुभव के अनुसार इसमें परिवर्तन होता रहा, परन्तु मूल स्वरूप कायम रहे, इसका प्रयास किया गया।

---

* राजस्थान पत्रिका, 25 सितम्बर 1975.

** रिपोर्ट आफ द स्टडी टीम आन न्याय पंचायत; विधि मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली।

पांचवां अध्याय

विभिन्न राज्यों में पंचायतीराज

स्थापना की पृष्ठभूमि :—भारत में पंचायतों की स्थापना के साथ योजना के निर्माण एवं उसकी पूर्ति का प्रश्न जुड़ा हुआ है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के साथ-साथ देश के सामने ग्राम विकास की समस्या सामने आयी। योजना को मूर्तरूप देने में सामान्य जन का सहयोग किस रूप में एवं किस सीमा तक प्राप्त हो इस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाता रहा है। यह महसूस किया गया कि जब तक योजना में जनता का पूरा सहयोग नहीं मिलता तब तक पूरी सफलता में अनेक कठिनाईयां आयेगी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा गांव स्तर पर विकास को प्रोत्साहित करने पर बल दिया गया। इसके लिए सामुदायिक विकास योजना का विचार सामने आया। इसके पहले भी सेवा ग्राम, इटावा, निलखेड़ी, आदि क्षेत्रों में ग्राम विकास के कुछ प्रयोग किये जा चुके थे, इनका अनुभव भी सामने था।

सन् 1952 में देश में सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रारम्भ किया गया। इस सामुदायिक विकास कार्यक्रम के पीछे जो वास्तविक भावना सन्निहित थी वह यह थी कि जनता योजना को अपना ले और इसके माध्यम से गांव में सामाजिक एवं आर्थिक विकास किया जाये। योजना को मूर्तरूप देने के लिए गैर सरकारी स्तर पर जन-प्रतिनिधियों की सलाहकार समिति का निर्माण किया गया।* प्रारम्भ में सामुदायिक विकास कार्यक्रम काफी उत्साह से चला। परन्तु जिस आशा से इस कार्यक्रम को प्रारम्भ किया और सामान्य जन के सहयोग से जो अपेक्षा रखी गयी, उसकी पूर्ति नहीं हो सकी। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत बनी सलाहकार समितियां सक्रिय नहीं हो सकी। सन् 1954 में सबसे पहले योजनागत कार्यों का मूल्यांकन किया गया और इस मुल्यांकन में यह स्वीकार किया गया कि सलाहकार समितियां मात्र सलाह देने तक समिति थी। निर्णय मुख्यतः अधिकारियों द्वारा ही लिये जाते रहे हैं अतः इनका सक्रिये योगदान नहीं

* योजना आयोग, प्रथम पंचवर्षीय योजना, नई दिल्ली।

होता । परिणामस्वरूप समितियां निष्क्रय हो गयी । सामुदायिक विकास कार्यक्रम में जनता की और सलाहकार समिति की रुची जाती रही, समितियों की बैठकें भी काफी कम हो गयी। इस प्रकार इस कार्यक्रम में शिथिलता आ गयी ।*

सन् 1955 में योजना आयोग ने सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के मूल्यांकन में कहा गया है—सामुदायिक विकास सलाहकार समिति का अस्तित्व प्रायः समाप्त-सा है, इसकी बैठकें महीनों तक नहीं हो पाती हैं, यदि बैठकें हुई भी तो उसमें लक्ष्य के अनूकुल काम नहीं हो पाता जिससे कि योजना को मदद मिले ।**

सामुदायिक विकास योजना का अनुभव—सुप्रथम प्रयास में जो कठिनाईयां आयी एवं असफलता दिखाई देने लगी उसे दूर करने का प्रयास प्रारम्भ किया गया । इस बात की आवश्यकता महसूस की जाने लगी कि ग्राम स्तर पर ऐसी व्यवस्था विकसित की जाय जिससे विकास में सामान्य जनता का अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त हो । सरकारी प्रशासनिक अधिकारियों से भिन्न जनता स्वयं इस काम में आगे आये । दूसरी पंचवर्षीय योजना में इस बात पर बल दिया गया कि जब तक ग्राम स्तर का संगठन मजबूत नहीं होगा और गांव-गांव में स्वशासन की गैर-सरकारी व्यवस्था विकसित नहीं होगी तब तक ग्राम विकास योजना की पूरी सफलता सम्भव नहीं । इस दृष्टि से पंचायत को अधिक से अधिक शक्ति देने की बात कही गयी ।

देश में सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन एवं भावी कार्यक्रम पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता महसूस की गयी । सन् 1957 में संसद सदस्य श्री बलन्तराय मेहता की अध्यक्षता में सामुदायिक विकास कार्यक्रम अध्ययन दल की नियुक्ति की गयी जिसे बलवन्तराय मेहता समिति के नाम से जाना जाता है ।*** इस समिति ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम, ग्रामपंचायत तथा देश की ग्रामीण समस्याओं का गहराई से अध्ययन किया । समिति ने

* देखें, इवाल्यूयेशन रिपोर्ट आन फर्स्ट ईयर आफ वकिंग आफ कम्यूनिटी प्रोजेक्टस, प्लानिंग कमीशन, भारत सरकार, 1954, पेज, 21.

** देखें, इवाल्यूयेशन रिपोर्ट आन सैकेन्ड इयर वकिंग आफ कम्यूनिटी प्रोजेक्टस; खण्ड 1, योजना आयोग, भारत सरकार, 1955, पेज 30.

*** देखें, रिपोर्ट आफ द टीम फार द स्टडी आफ कम्यूनिटी प्रोजेक्टस एण्ड नेशनल ट्रस्टेसशन सर्विस; खण्ड 1, योजना आयोग, 1957.

व्यापक अध्ययन के वाद जो सुझाव दिये उसी के आधार पर मौजूदा पंचायती-राज का ढांचा खड़ा किया गया है।

नयी दिशा : पंचायतीराजः—समस्त परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् वलवन्तराय मेहता समिति ने सुझाव दिया कि विकास योजनाओं की सफलता के लिए एक विकेन्द्रित योजना लागू की जाय जिसके अन्तर्गत प्रशासनिक सत्ता का जनसमूह के लघुत्तम स्तर पर विकेन्द्रीकरण किया जाय और उनके द्वारा विकास आयोजनों का निर्माण एवं उन्हें कार्यान्वित करने का काम स्थानीय क्षेत्र के जन-प्रतिनिधियों एवं संस्थाओं को सौंप दिया जाय। ऐसा होने पर प्रत्येक गांव अपने विकास की जिम्मेदारी का अनुभव करेगा और उस गांव की पंचायत सक्रिय होकर अपने विकास कार्य में जुट जायगी और ये संस्थायें भी यह समझने लगेंगी कि ग्राम स्तर पर कार्य करने का अधिकार उन्हीं को है। इस प्रकार समिति ने वताया कि देश के विकास कार्यक्रम प्रशासन के लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा ही सफलतापूर्वक चलाये जा सकते हैं और उसने इस योजना के लिए ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायतें, खण्ड स्तर पर पंचायत समितियाँ तथा जिला स्तर पर जिला परिषदों की स्थापना का सुझाव दिया। समिति ने अपने सुझाव में कहा, "सरकार को अपने कतिपय कर्त्तव्यों तथा दायित्वों से अपने आप को मुक्त कर लेना चाहिए। उन्हें किसी ऐसे निकाय को सौंप देना चाहिए जिन पर उनके क्षेत्राधिकार के अन्दर सम्पूर्ण विकास कार्य को पूरा करने का भार होगा और सरकार के पास केवल पथ-प्रदर्शन, पर्यवेक्षण तथा उच्चतर आयोजन का कार्य रहना चाहिए।

मेहता समिति ने विकेन्द्रीकरण की जो योजना प्रस्तुत की, उस पर जनवरी 1958 में राष्ट्रीय विकास परिषद् ने विचार किया। परिषद् ने पंचायतीराज की व्यवस्था को स्वीकार किया और राज्यों से इस दिशा में कदम उठाने का निवेदन किया। परिषद् ने पंचायतीराज व्यवस्था को मोटे तौर पर इस रूप में प्रतिपादित किया है।

1. ग्राम से जिला स्तर तक स्वशासन की तीन-स्तरीय व्यवस्था होनी चाहिए।
2. स्थानीय इकाईयों को पर्याप्त जिम्मेदारी एवं अधिकार दिया जाय।
3. जिम्मेदारियों एवं कार्यक्रम को पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन दिया जाय।
4. विकास सम्बन्धी सभी कार्य पंचायतीराज संस्थाओं के माध्यम से किया जाय।

इस समय पूरे देश में पंचायतीराज की स्थापना की जा चुकी है। सन् 1952 में ग्रामपंचायतों की स्थापना से जिस व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ था उसे तीन-स्तरीय पंचायतीराज में पूर्णता प्राप्त हुई।

सारे देश में तीन-स्तरीय पंचायतीराज के बावजूद विभिन्न राज्यों में कुछ भिन्नता है। विभिन्न राज्यों में पंचायतीराज की स्थापना राज्य के कानून के अन्तर्गत की गयी है। सामान्यतया ग्राम या ग्राम समूह स्तर पर ग्रामपंचायत, ताल्लुका स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद् है। तीनों स्तर पर स्थापित ये स्वायत्त इकाईयां एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। पंचायतीराज की ये इकाईयां जन-प्रतिनिधियों द्वारा बनती हैं जो कि एक दूसरे से लोकतांत्रिक रूप से जुड़े हुए हैं।

इस समय पूरे देश में ग्रामपंचायतों की स्थापना हो चुकी है। कुछ राज्यों को छोड़कर शेष सभी राज्यों में तीन-स्तरीय पंचायतीराज की स्थापना की जा चुकी है। जम्मू-कश्मीर, बिहार, केरल, नागालैंड और मध्यप्रदेश में पूर्ण रूप से पंचायतीराज की स्थापना नहीं की जा सकी है। इस समय देश में 212424 ग्राम पंचायतें, 3490 पंचायत समितियां और 250 जिला परिषदें हैं।

विभिन्न राज्यों में पंचायतीराज की व्यवस्था:—ग्राम, प्रखण्ड एवं जिला स्तर पर पंचायतीराज की इकाईयों की विभिन्न राज्यों में संगठन, अधिकार, कार्य आदि की क्या स्थिति है, इस पर संक्षेप में विचार करना चाहेंगे।

ग्राम सभा :— भारत विकेन्द्रित रूप से बसे छोटे-बड़े गांवों का समूह है। पंचायतीराज में सबसे नीचे की इकाई गांव है और इसकी विकेन्द्रित इकाई ग्राम-सभा है। ग्रामसभा में गांव के सभी बालिग स्त्री-पुरुष सदस्य होते हैं। केरल, तमिलनाडु, राजस्थान और मैसूर को छोड़कर सभी राज्यों में ग्रामसभा का संगठन है। जम्मू-कश्मीर, मैसूर और राजस्थान में पंचायत स्तर पर सभी बालिगों की बैठक की व्यवस्था है।

ग्राम-स्तर पर बनी ग्राम-सभा का कार्यक्रम एवं जिम्मेदारी सीमित है। प्रायः सभी राज्यों में ग्राम-सभा की बैठक, जिसमें गांव के सभी बालिगों के भाग लेने की अपेक्षा रखी गयी है, वर्ष में एक बार होती है। गांव के लोग अपनी सुविधा-नुसार इस प्रकार की बैठक करते हैं। सामान्य तौर पर फसल काटने के बाद फुरसत का समय रहता है और उसी समय बैठक होती है। जम्मू-कश्मीर और उड़ीसा में वर्ष में एक बार ग्राम-सभा की बैठक हो, ऐसी अपेक्षा रखी गयी है।

पंजाव एवं हरियाणा जैसे राज्यों में यह प्रावधान है कि ग्राम-सभा के कुल सदस्यों के 1/5 भाग की मांग पर कभी भी ग्राम-सभा की वैठक बुलाई जा सकती है। कई राज्यों में ग्राम-सभा द्वारा ग्राम स्तर पर कार्यकारिणी का गठन किया जाता है। इस कार्यकारिणी को पंजाव, विहार, मध्यप्रदेश, हरियाणा और प० वंगाल में ग्रामपंचायत कहते हैं और आंध्र, असम, गुजरात, जम्मू-कश्मीर, मैसूर, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडु एवं केरल में पंचायत कहते हैं।

ग्राम-स्तर की ग्राम-सभा अपनी पंचायत, जिसका वह अंग है, के वजट पर विचार करती है। ग्राम-सभा अपनी वैठक में गांव में रहने वाले कार्यों पर भी विचार करती है। वह इस वात पर भी विचार करती है कि गांव में किस प्रकार के काम किये जाने चाहिए। पंचायतीराज के अन्तर्गत किये जाने वाले सभी कार्यों को करने एवं एक सीमा तक योजना वनाने का काम ग्राम-सभा करती है। पंचायतीराज में ग्राम-सभा एवं ग्रामपंचायत सहयोगी लोकतन्त्र की मौलिक इकाई है। इस स्तर पर जनता स्वयं अपनी व्यवस्था में भागीदार वनती है।

ग्रामपंचायत का संगठन (Structure of Village Council Panchayat):—ग्रामपंचायत इस संरचना का आधार है। यह एक प्राथमिक इकाई है। एक पंचायत का कार्य-क्षेत्र सामान्यतः एक राजस्व गांव होता है। कभी-कभी एक राजस्व गांव में कई छोटे-छोटे गांव भी होते हैं। वड़े गांव के आस-पास के छोटे गांवों को निकटतम ग्रामपंचायत के साथ जोड़ दिया जाता है। कई एक राज्यों में एक पंचायत की सीमा जनसंख्या के आधार पर निर्धारित की गयी है। कानून में एक पंचायत की न्यूनतम सीमा तय कर दी गयी है। महाराष्ट्र, गुजरात एवं मैसूर में 2,000 जनसंख्या पर एक पंचायत माना गया है। उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के 1,000 और पंजाव, हरियाणा में न्यूनतम सीमा 500 रखी गयी है। पंचायतों में जनसंख्या का औसत केरल में 15,493; उड़ीसा में 6,746; विहार, जम्मू-कश्मीर, असम और प० वंगाल में 3,000 से 4,000 के वीच है। मैसूर, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश में औसत 2,000 से 3,000 के वीच है। आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में 1,500 से 2,000 के वीच है। गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, पंजाव और दिल्ली में औसत संख्या 1,000 से 1,500 के वीच है। तमिलनाडु और मैसूर में ऐसी पंचायतें जिसकी जनसंख्या 5,000 है और जहाँ के पंचायत की आय 10,000 रु० वार्षिक है उसे नगर पंचायत कहा गया है और आन्ध्र प्रदेश में उसे नोटीफाइड पंचायत कहते हैं। गुजरात में 10,000 और 30,000 की जनसंख्या के गांव में नगर पंचायत की

व्यवस्था लागू की गयी है। पूरे देश में पंचायत जनसंख्या का औसतन 1,646 और एक पंचायत में गांवों की संख्या का औसत 2.6 पड़ता है।

पंचायत की रचना:—ग्रामपंचायत, जिसमें एक से अधिक गांव भी शामिल होते हैं, प्रतिनिधियों का चुनाव करती है, विभिन्न राज्यों में पंचायत में चुने गये प्रतिनिधियों की संख्या 5 से 31 के बीच है।

सरपंच (मुखिया) और उप सरपंच को शामिल करके विभिन्न राज्यों में पंचायत में चुने गये प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार है :—

राज्य	चुने जाने वाले प्रतिनिधि	विशेष
आन्ध्र प्रदेश	5 से 17 तक	
असम	9 से 11 तक	
बिहार	9	
गुजरात और अन्डमान-निकोबार द्वीप	9 से 15 तक	
जम्मू-कश्मीर	9 से 11 तक	
केरल और महाराष्ट्र	7 से 15 तक	
मध्य प्रदेश	10 से 25 तक	
तमिलनाडु	1 से 15 तक	
मैसूर	11 से 19 तक	
उड़ीसा	11 से 25 तक	
पंजाब, हरियाणा, राजस्थान	5 से 9 तक	
गोवा, दमन, ड्यू	6 से 21 तक	सहवरण सहित
उत्तर प्रदेश	16 से 31 तक	
प० बंगाल	1	ग्राम सभा के प्रत्येक 500 की जनसंख्या पर एक
दिल्ली	4 से 11 तक	
हिमाचल प्रदेश	9 से 17 तक	
मणिपुर	11 से 15 तक	

बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और प० बंगाल को छोड़कर शेष सभी राज्यों में महिला प्रतिनिधि का चुनाव अन्य प्रतिनिधियों की भांति होता है। इसी प्रकार

विहार, जम्मू-कश्मीर, उड़ीसा और प० बंगाल को छोड़कर शेप सभी राज्यों में पिछड़ी और अनुसूचित जनजाति के अलग प्रतिनिधि चुने जाते हैं। विहार में 4 प्रतिनिधियों की नियुक्ति मुखिया द्वारा की जाती है और यह अपेक्षा रखी जाती है कि वह महिला एवं पिछड़ी जाति, जनजाति को प्रतिनिधित्व देगा।

कार्यकाल:—विभिन्न राज्यों में पंचायतों का कार्यकाल 3 से 5 वर्ष के वीच है। कार्यकाल की स्थिति इस प्रकार है:—

5 वर्ष का कार्यकाल इन राज्यों में है—विहार (प्रथम श्रेणी के पंचायतों में) केरल, मध्यप्रदेश, तमिलनाडु, मैसूर, पंजाव, हरियाणा और उत्तर प्रदेश।

4 वर्ष का कार्यकाल—असम, विहार (द्वितीय श्रेणी की पंचायतें), गुजरात, जम्मू-कश्मीर, महाराष्ट्र, पं० वंगाल, मणीपुर, अन्डमान निकोवार और गोवा-दमन-ड्यू।

3 वर्ष का कार्यकाल—आन्ध्र प्रदेश, विहार (तीसरी श्रेणी की पंचायतें), उड़ीसा, राजस्थान, दिल्ली और हिमाचल प्रदेश।

चुनाव पद्धति:—प्रतिनिधियों का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान द्वारा किया जाता है जिसमें पंचायत क्षेत्र के सभी वयस्क शामिल होते हैं। पंचायत अपने क्षेत्र की कार्यकारिणी होती है जो कि पंचायतीराज के विविध कार्यों को जनप्रतिनिधि के रूप में पूरा करता है। कुछ राज्यों में (आन्ध्र, गुजरात, केरल, तमिलनाडु और महाराष्ट्र) गांवों की वार्डों में विभाजित किया जाता है और उसी पर प्रतिनिधियों का चुनाव किया जाता है, परन्तु पंजाव, हरियाणा, असम जैसे राज्यों में पूरी पंचायत को एक इकाई मानकर चुनाव होता है। इस प्रकार ग्रामपंचायत के चुनाव में पूरा गांव शामिल होता है। यह लोकतंत्र की प्राथमिक इकाई है जहाँ प्रत्येक लोकतंत्रीय व्यवस्था का मूर्तरूप देखा जा सकता है।

ग्रामपंचायत में एक अध्यक्ष होता है जिसे विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न नाम से संवोधित किया जाता है जैसे सभापति, सरपंच, मुखिया आदि। कुछ राज्यों में उप सरपंच भी होते हैं। उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, पंजाव, हरियाणा, राजस्थान, विहार, असम और हिमाचल प्रदेश में अध्यक्ष (सरपंच) का चुनाव पूरी ग्राम पंचायत के वयस्कों द्वारा किया जाता है। अन्य राज्यों में सरपंच (मुखिया) का चुनाव ग्रामपंचायत में चुने गये प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है—वह चुने गये प्रतिनिधियों में से एक होता है।

पंचायत की बैठक सामान्यतया महीने में कम से कम एक बार होती है। प्राय: तीन सदस्यों का कोरम माना जाता है। पंचायत में समान मताधिकार होता है और निर्णय बहुमत के आधार पर किया जाता है। प्रयास किया जाता कि सर्वसम्मति या सर्वानुमति आये, परन्तु कानूनी स्थितियों में बहुमत स्वीकार किया गया है। कार्य की सुविधा के लिए ग्रामपंचायत विविध समितियों का भी गठन करती है जिसे अलग-अलग काम सौंपा जाता है। कितनी समितियां बनेगी, इस बारे में सभी राज्यों की स्थिति एक नहीं है।

जन-प्रतिनिधियों के अतिरिक्त सचिव की व्यवस्था प्राय: सभी राज्यों में है। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र एवं गुजरात जैसे राज्यों में पंचायतीराज कानून में यह व्यवस्था है कि पंचायत स्वयं कार्य संचालन के लिए पंचायत सचिव की नियुक्ति करे। बिहार एवं मैसूर में राज्य सरकार की ओर से सचिव की नियुक्ति की जाती है। तमिलनाडु एवं आन्ध्र में बड़ी पंचायतें हैं, यहाँ राज्य सरकार अपने कर्मचारियों में से किसी को सचिव नियुक्त करता है। यहाँ का अध्यक्ष प्राय: पार्ट टाइम क्लर्क (जो कि सचिव के रूप में काम करता है) के सहयोग से काम करता है। कहीं-कहीं सचिव पूरा समय भी देता है।

सचिव को पूरा वेतन न मिलकर मानदेय मिलता है। कुछ राज्यों में (पंजाब, हरियाणा) पंचायत समिति की ओर से सचिव की नियुक्ति होती है। उत्तर प्रदेश में सचिव की नियुक्ति का अधिकार जिला परिषद को है। अधिकांश राज्यों में यह स्थिति देखने में आती है कि ऐसी व्यवस्था है जिसमें एक ही व्यक्ति एक से अधिक पंचायत में सचिव का काम करता है। कई पंचायतों में एक व्यक्ति एक ही पंचायत का काम भी देखता है। पंचायत सचिव का वेतन प्राय: राज्य सरकार की ओर से दिया जाता है जो कि पंचायत की आय से अलग होती है। पंचायत अपने फंड से यह वेतन नहीं देती है। उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र में पंचायत भी एक हिस्सा देता है। सचिव की शैक्षणिक योग्यता अधिकांश राज्यों में हाई स्कूल मानी गयी है।

सचिव का मुख्य कार्य पंचायत के अन्तर्गत होने वाले कार्यालय सम्बन्धी कार्यों को पूरा करना है। पंचायत द्वारा लिये गये निर्णय को लिखना, कार्यवाही लिखना, बजट तैयार करने में मदद करना, कार्य-विवरण तैयार करना, हिसाब रखना आदि कार्य सचिव द्वारा किया जाता है पंचायत के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों को इनकी मदद मिलती है। परन्तु जहाँ के लोग अशिक्षित हैं वहाँ सचिव का प्रभाव अधिक हो जाता है।

सचिव के अतिरिक्त पंचायत अपनी सुविधा-क्षमता एवं बजट को देखते हुए कर्मचारियों को नियुक्त कर सकता है। पंचायत चौकीदार की भी नियुक्ति करती है। यदि चाहे तो चपरासी, सफाई कामगार आदि की भी नियुक्ति कर सकती है।

कार्यः—ग्राम पंचायत के कार्यों को मोटे रूप में दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक, प्रशासनिक कार्य और दो, न्याय सम्बन्धी कार्य। प्रशासनिक कार्यों में सभी प्रकार के कार्य शामिल हैं जैसे,समाज-कल्याण, सामान्य व्यवस्था, आर्थिक विकास, नागरिक सेवा आदि। प्रायः सभी राज्यों में प्रशासनिक कार्यों की प्रकृति एक समान है। कानून के अन्तर्गत कई राज्यों में पंचायत के अधिकार एवं कर्तव्य का विवरण दिया गया है। कुछ राज्यों में अनिवार्य कार्य एवं सहायक कार्य के रूप में भी कार्य विभाजन किया गया है। सामान्य नागरिक सेवाओं की जिम्मेदारी सभी राज्यों की पंचायतों में समान है। इन सेवाओं में मुख्य है—जल-पूर्ति की यथासम्भव सुविधा देना, तालाब एवं कुंओं की व्यवस्था, शौचालय एवं सफाई, रोशनी, गांव के सड़क की व्यवस्था, शिशु-कल्याण, जन्म-मृत्यु का विवरण रखना, प्राथमिक विद्यालय की देख-रेख, ग्राम सुरक्षा आदि। इसके अतिरिक्त अकाल राहत, ग्राम में आर्थिक विकास, उद्योग, कृषि विकास एवं समाज कल्याण के कार्य भी पंचायत के माध्यम से पूरा किया जाता है। गांव की व्यवस्था एवं विकास सम्बन्धी व्यापक अधिकार ग्रामपंचायत को दिये गये हैं परन्तु वह कितना कार्य कर पाता है यह पंचायत की शक्ति एवं सक्रियता पर निर्भर करता है। यदि गांव के लोग इस दिशा में सक्रिय एवं सक्षम हैं तो गांव के समग्र विकास का कार्य करने में पंचायत सक्षम है। अब तक के अनुभव पर से यह आम धारणा है कि ग्राम पंचायतों को जो कार्य दिये गये हैं उनमें से कुछ कार्यों को ही कर पा रही है, उनमें इतनी क्षमता नहीं आ सकी है कि सभी प्रकार के कार्यों को हाथ में ले सकें।

न्याय कार्यः—कुछ राज्यों में (पंजाब, हरियाणा, तमिलनाडु) ग्राम-पंचायत को प्रशासनिक एवं न्याय दोनों प्रकार के अधिकार दिये गये हैं। ग्राम-पंचायत स्तर पर ही न्याय की व्यवस्था है। लेकिन ज्यादातर राज्यों में न्याय कार्य के लिए एक से अधिक पंचायत के बीच न्याय पंचायत की व्यवस्था की गयी है, इसे पंचायती अदालत भी कहते हैं। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, असम, गुजरात, महाराष्ट्र, जम्मू,कश्मीर, राजस्थान,* दिल्ली और मणीपुर में न्याय पंचायत की व्यवस्था है।

---

* यहां नये निर्णय के अनुसार न्याय-पंचायतें समाप्त की गयी हैं और यह काम ग्रामपंचायत को सौंप दिया गया है।

एक न्याय पंचायत में एक से अधिक ग्राम पंचायतें शामिल होती हैं। गुजरात, महाराष्ट्र और असम में 5 या उससे अधिक पंचायतों के बीच एक न्याय पंचायत होती है। उड़ीसा में एक न्याय पंचायत में 1 से 3 पंचायतें होती हैं। राजस्थान में यह संख्या 5 से 7 तक होती है। उत्तर प्रदेश में एक न्याय पंचायत में 9 पंचायतें होती हैं जबकि दिल्ली में यह संख्या 8 से 10 के बीच है। मणीपुर में 3 से 7 पंचायतें होती हैं।

असम में न्याय पंच की नियुक्ति जिला मजिस्ट्रेट द्वारा की जाती है। गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान में ग्रामपंचायत द्वारा न्याय पंचों का चुनाव किया जाता है। दिल्ली में ग्राम सभा द्वारा चुनाव होता है। उत्तर प्रदेश एवं मणीपुर में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा न्याय पंचों की नियुक्ति होती है। असम एवं दिल्ली में न्याय पंचायत का कार्यकाल 3 वर्ष का है। गुजरात का कार्यकाल 4 वर्ष और उत्तर प्रदेश एवं मणीपुर में कार्यकाल 5 वर्ष का है। राजस्थान में 1/3 सदस्य प्रति वर्ष बदलते हैं। न्याय पंचायत के अध्यक्ष की नियुक्ति कुछ राज्यों में ग्राम सभा द्वारा और कुछ राज्यों में पंच आपस में अध्यक्ष नियुक्त करता है।

ग्रामपंचायत की आर्थिक व्यवस्था:—पंचायत स्तर पर आर्थिक व्यवस्था के लिये पंचायत को कई प्रकार के अधिकार दिये गये हैं। मुख्य-तौर पर ग्रामपंचायत को निम्नलिखित स्रोतों से आमदनी होती है :—

(क) कर
(ख) फीस और जुर्माना
(ग) सहायता
(घ) विविध
    (1) सम्पत्ति-कर
    (2) सेवा-कर
    (3) पशु-कर
    (4) अन्य

सरकार से मिलने वाली आर्थिक मदद ग्रामपंचायत के मुख्य आय का स्रोत है। ग्रामपंचायतों को राजस्व का एक भाग भी मिलता है।

ग्रामपंचायतों को व्यक्तिगत सम्पत्ति एवं व्यापार आदि पर कर लगाने का अधिकार है। प्राय: सभी राज्यों में सम्पत्ति एवं सेवा-कर पंचायत द्वारा लगाया जाता है। इसी प्रकार मकान, पशु, स्थानीय वाहन आदि पर पंचायतें कर

लगाती हैं। मेला, विवाह,यात्री, श्रम-कर श्रादि भी पंचायतों द्वारा लगाया जाता है। स्थानीय कर के वारे में विभिन्न राज्यों की एक स्थिति नहीं है। विभिन्न राज्यों में तथा एक राज्य में भी भिन्न-भिन्न पंचायतों में श्राय की स्थिति एक समान नहीं है। पंचायत के करों को चार भागों में वांट सकते हैं—(1) सामान्य सम्पत्ति-कर (2) भूमि से सम्वन्धित-कर (3) व्यवसाय-कर श्रौर (4) पशु एवं वाहन-कर।

पंचायतों को राज्य सरकार द्वारा वसूल किये जाने वाले कर का भी एक हिस्सा मिलता है। विभिन्न राज्यों में राज्य सरकार के कर में से पंचायत को मिलने वाला हिस्सा इस प्रकार है :—

राज्य	लगान का हिस्सा	भूमि सम्वन्वी श्रन्य कर में हिस्सा
1—श्रान्ध्र प्रदेश	25%	25%
2—श्रसम	15%	100%
3—विहार	6⅓%	—
4—जम्मू-कश्मीर	—	—
5—केरल	100%	100%
6—मध्य प्रदेश	—	—
7—तमिलनाडु	—	—
8—महाराष्ट्र	30%	—
9—मैसूर	30%	—
10—उड़ीसा	—	48%
11—पंजाव	10%	—
12—हरियाणा	10%	—
13—राजस्थान	20 पैसा प्रति व्यक्ति	—
14—उत्तर प्रदेश	—	—
15—प० वंगाल	—	—
16—दिल्ली	—	—
17—हिमाचल प्रदेश	—	—
18—मणीपुर	—	—

यह श्राम मान्यता है कि जमीन सम्वन्धी कर का मुख्य भाग पंचायतों को मिलना चाहिये। राज्य सरकारें इस प्रयास में भी हैं इसकाकि श्रधिक से श्रधिक भाग ग्राम-पंचायतों को मिले।

पंचायत समिति:—ग्राम (Village) और पंचायत (Council) पंचायती-राज की प्राथमिक इकाई है। इसके वाद की इकाई पंचायत समिति है। गुजरात, महाराष्ट्र और मैसूर में मध्यवर्ती इकाई ताल्लुका स्तर पर है, परन्तु अन्य सभी राज्यों में प्रखण्ड स्तर की इकाई है जिसे पंचायत समिति, क्षेत्र समिति, आंचलिक परिषद् आदि नामों से जाना जाता है। गुजरात, महाराष्ट्र एवं मैसूर में ताल्लुका पंचायत को ताल्लुका विकास वोर्ड आदि नामों से जाना जाता है। पंचायत समिति में जन-प्रतिनिधियों के प्रमुख को विभिन्न राज्यों में अध्यक्ष, प्रधान, सभापति, प्रमुख आदि नामों से जाना जाता है।

पंचायत समिति पंचायतीराज की मध्यवर्ती इकाई है, इसके ऊपर जिला परिषद् और नीचे ग्रामपंचायत की इकाई हैं। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रखण्डों का निर्माण किया गया और प्रखण्ड को विकास कार्य का माध्यम वनाया गया। एक प्रखण्ड या पंचायत समिति में आमतौर पर 100 गांव शामिल रहते हैं। विभिन्न राज्यों में इसका क्षेत्र विस्तार 390 से 520 वर्ग किलोमीटर के वीच है। पंचायत समितियों की जनसंख्या विभिन्न राज्यों में 60 से 70 हजार के वीच है।

गठन :—पंचायत समिति में आमतौर पर क्षेत्र के सभी ग्राम-पंचायतों के सरपंच सदस्य होते हैं। पंचायत समिति क्षेत्र के सहवरित (महिला, हरिजन, आदिवासी आदि) सदस्यों को भी पंचायत समिति में प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है।

आन्ध्र प्रदेश, विहार, गुजरात उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, और उत्तर-प्रदेश में ग्रामपंचायत का अध्यक्ष पंचायत समिति का सदस्य होता है। उड़ीसा में प्रत्येक ग्रामपंचायत, पंचायत समिति के लिए एक प्रतिनिधि का चुनाव करता है।

असम में ग्राम-पंचायतों के अध्यक्षों के अतिरिक्त ग्राम-पंचायतों से कुछ अन्य प्रतिनिधि भी पंचायत समिति के सदस्य चुने जाते हैं। जम्मू-कश्मीर में सरकार की ओर से भी नियुक्ति का प्रावधान है। मैसूर में ताल्लुका क्षेत्र को कई छोटे क्षेत्रों में विभाजित किया गया और प्रत्येक क्षेत्र से 2 या 3 सदस्य प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा ताल्लुका विकास वोर्ड में भेजे जाते हैं। हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और पंजाव में पंचायत समिति क्षेत्र के सभी ग्राम-पंचायतों के पंचों को मिलाकर एक निर्वाचन मण्डल वनता है जो कि पंचायत समिति के लिए

प्रतिनिधियों का चुनाव करता है। इसके अतिरिक्त जिस जिले में पंचायत समिति होती है उस जिले के जिला परिषद् का अध्यक्ष पंचायत समिति की बैठक में आता है। पंचायत समिति में हरिजन, आदिवासी, महिलाओं का भी प्रतिनिधित्व दिया जाता है जिसकी संख्या विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न है। क्षेत्र का विधायक एवं संसद सदस्य भी पंचायत समिति का सदस्य होता है।

पंचायत समिति के सभी सदस्य मिलकर एक अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चुनाव करते हैं।

विभिन्न राज्यों में पंचायत समिति का कार्यकाल 3 से 5 वर्ष का रहता है जिसकी राज्यवार स्थिति इस प्रकार है :—

राज्य	पंचायत समिति का कार्यकाल
1. आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश	5 वर्ष
2. असम, गुजरात, जम्मू कश्मीर, मैसूर, पं० बंगाल	4 वर्ष
3. बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, दिल्ली	3 वर्ष

पंचायत समिति में अध्यक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वह बैठक की अध्यक्षता करता है, साथ ही साथ पंचायत के कार्यों की देख-रेख भी करता है। वह पंचायत समिति के प्रशासनिक कार्यों को भी देखता है। यह अपेक्षा रखी जाती है कि अध्यक्ष विभिन्न कार्यों के लिए बनी समितियों के माध्यम से कार्य करेगा। पंचायत समिति कार्य में सुविधा के लिए योजना, समाज कल्याण, वित्त, उत्पादन आदि की अलग-अलग समितियां होती हैं। विभिन्न राज्यों में समितियों की संख्या भिन्न-भिन्न है। इन समितियों का अलग-अलग अध्यक्ष होता है। कभी-कभी पंचायत समिति का अध्यक्ष ही इन समितियों का अध्यक्ष होता है।

कार्य :—पंचायत समिति का कार्य ग्रामपंचायत की भांति व्यापक है। इसका कार्य-क्षेत्र पंचायत से विस्तृत होता है और अपने क्षेत्र में सर्वांगीण विकास की जिम्मेदारी पंचायत समिति की होती है। पंचायत समिति के कार्यों को मुख्यतः इन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

1. विकास कार्य :—सभी राज्यों में पंचायत समिति को विकास का कार्य सौंपा गया है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम को मूर्तरूप देने की जिम्मेदारी पंचायत समिति की है। पंचायत समिति प्रखण्ड स्तर पर विकास की योजना भी वनाती एवं लागू करती है। सरकार की योजनायें पंचायत समिति के माध्यम से लागू की जाती हैं।

2. नागरिक सेवा :—पंचायत समिति नागरिक कल्याण एवं विकास के कार्यों को भी पूरा करती है। प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, यातायात, छोटी सिंचाई आदि कार्य पंचायत समिति द्वारा किया जाता है।

3. निरीक्षण एवं व्यवस्था सम्बन्धी कार्य— उक्त कार्यों के अतिरिक्त पंचायत समिति ग्राम पंचायतों के कार्यों की देख-रेख भी करती है। प्रशासनिक कार्यों की देख-रेख एवं व्यवस्था इसके द्वारा की जाती है। ग्राम पंचायतों का वजट एवं योजनाओं के निर्माण में पंचायत समिति मददगार होती है। वह अपने से नीचे की इकाई का मार्ग-दर्शक भी है।

4. ऐजेन्सी:— पंचायत समिति सरकारी कार्यों को मूर्तरूप देने में ऐजेन्सी का काम भी करती है। सरकार प्राय: अपनी योजनायें इसी के माध्यम से पूरी करती है।

पंचायत समिति लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की मजवूत इकाई है। इसके माध्यम से क्षेत्रीय नियोजन का लक्ष्य पूरा किया जा सकता है। इसके साथ-साथ जन-प्रतिनिधि विकास कार्य को पूरा करने में स्वयं रुचि ले इस दिशा में पंचायत समिति की प्रमुख भूमिका होती है। पंचायत समिति के माध्यम से ग्राम जनता स्वयं की शक्ति से एवं प्रयास से विकास का प्रयास करती है।

आर्थिक व्यवस्था:—पंचायत समिति की आर्थिक व्यवस्था प्रखण्ड के वजट के साथ जुड़ी हुई है। इसके वजट का वड़ा भाग विकास योजनाओं से संवद्ध होता है जो कि सरकारी योजनाओं की पूर्ति के लिए इसे प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पंचायत समिति को राजस्व का एक भाग भी मिलता है। राज्य सरकार की ओर से पंचायत समिति को आर्थिक सहायता भी प्राप्त होती है। इसे विविध प्रकार का कर लगाने का भी अधिकार है।

आर्थिक स्रोत:—पंचायत समिति को प्राप्त होने वाली आय को नीचे लिखे वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :—

1. योजनागत वजट:—सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत विकास खण्डों की स्थापना की गयी। सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत प्रखण्ड विकास के कार्य को विविध चरणों में पूरा करने का प्रावधान है। प्रथम चरण पाँच वर्षों का माना गया है, जिसमें प्रखण्ड को वार्षिक 12 लाख रुपया विकास कार्यों के लिए मिलता है। दूसरे चरण में पाँच लाख रुपया मिलता है। अपेक्षा यह रखी गयी है कि धीरे-धीरे प्रखण्ड कार्यालय के माध्यम से पंचायत समिति क्षेत्र में विकास की प्रक्रिया चल निकलेगी। क्षेत्र अपना विकास स्वयं करने की स्थिति में आ जाये एवं प्रखण्ड कार्यालय की सरकारी ऐजेन्सी धीरे-धीरे मुरझा जाए। यही कारण है कि दूसरे चरण के वाद प्रखण्ड का वजट मात्र एक लाख वार्षिक रह जाता है। इस स्थिति में प्रखण्ड एक ऐजेन्सी एवं सामान्य व्यवस्था का काम देखता है।

इस प्रकार देश भर की पंचायत समितियों की स्थापना वर्ष के वाद, विविध चरणों में है। पंचायत समितियों को, प्रखण्ड जिस चरण (stage) में रहता है, उसके अनुसार वजट प्राप्त होता है। पंचायत समिति योजनाओं के लिए सरकार से धन प्राप्त करने के साथ-साथ जनता से भी धन प्राप्त करता है। यह धन नकद, वस्तु एवं श्रम तीनों रूपों में प्राप्त होता है। किसी योजना के लिए केन्द्र या राज्य से धन प्राप्त होता है तो यह अपेक्षा रखी जाती है कि चार हिस्से में एक हिस्सा जनता स्वयं जुटायेगी। विकास कार्यों के लिए राज्य की ओर से कर्ज भी प्राप्त होता है।

2. कर :—पंचायत समिति को कर लगाने का जो अधिकार दिया गया है उसके अनुसार विभिन्न राज्यों में कर लगाने की स्थिति इस प्रकार है :—

1. संपत्ति के क्रय-विक्रय सम्बन्धी कर	मैसूर, गुजरात
2. पंचायत समिति क्षेत्र में पशु क्रय-विक्रय	मैसूर-प्रति पशु 25 पै० से अधिक नहीं।
3. संविधान की सीमा के अन्तर्गत राज्य सरकार द्वारा पंचायत समिति को जिस प्रकार का कर लगाने का अधिकार दिया जाता वह कर पंचायत समिति लगाती।	पंजाब, हरियाणा
4. व्यवसाय कर	राजस्थान
5. मेला कर	राजस्थान

6.	शिक्षा	राजस्थान, गुजरात, (प्राथमिक)
7.	मनोरंजन कर	मध्य प्रदेश, तमिलनाडू
8.	मकान कर	असम
9.	पानी कर	असम, बिहार
10.	प्रकाश (Lighting Tax)	असम
11.	मछली पालन कर	असम
12.	कृषि योग्य जमीन कर	असम
13.	सिचाई कर	बिहार
14.	प्रदर्शन कर	तमिलनाडू
15.	नदी पुल कर	पं० बंगाल

अन्य करों से आय :—

(क) मेला तथा कृषि प्रदर्शन पर फीस।
(ख) चिकित्सालय, विद्यालय, बाजार में जाने पर फीस।
(ग) लाइसेन्स फीस।
(घ) न्याय फीस।
(च) पुरस्कार फीस।
(छ) पंचायत समिति की सम्पत्ति एवं किराया आदि।
(ज) राज्य सरकार से कर्ज।
(झ) दान।

4. राज्य सरकार से सहायता:—

क–सामुदायिक विकास कार्यक्रम की पूर्ति के लिए प्राप्त धन।

ख–विविध योजनाओं के अन्तर्गत समिति एवं संस्थाओं को मिलने वाली सहायता।

ग–केन्द्र एवं राज्य सरकार से स्थानीय संस्था या व्यक्ति को मिलने वाली राशि।

घ–पंचायत समिति सरकारी कार्यों को पूरा करने की एक एजेन्सी है। इस कार्य के लिए भी सरकार से धन प्राप्त होता है।

च–विकास कार्य हेतु पंचायत समिति को साधन तथा अन्य कई प्रकार की सुविधायें भी प्राप्त होती हैं।

5. **राज्य सरकार की आय में से हिस्सा :—**
क—भूमि राजस्व में से हिस्सा ।
ख—स्थानीय चुंगी में से हिस्सा ।
ग—बिक्री कर में से हिस्सा ।

व्यय :—प्रखण्ड स्तर पर पंचायत समिति सामुदायिक विकास कार्यक्रम को पूरा करती है । विविध योजनाओं के अन्तर्गत प्राप्त धन को योजना के अनुकूल व्यय की जिम्मेदारी होती है । विभिन्न योजनाओं में (पूरे देश में) पंचायत समितियों में विभिन्न मदों में होने वाला व्यय इस प्रकार था ।

(लाख रुपयों में-)

व्यय के मद	प्रथम योजना	दूसरी योजना	तीसरी योजना
1. प्रखण्ड कार्यालय पर व्यय	1051	5476	8169
2. कृषि एवं पशुपालन	355	1100	3106
3. सिंचाई	1083	4859	5861
4. ग्रामीण उद्योग	218	701	1373
5. स्वास्थ्य सफाई	379	1687	2311
6. शिक्षा	344	1206	1411
7. समाज शिक्षण	200	1019	1378
8. यातायात	516	1261	1840
9. मकान	173	1090	1167
10. अन्य	279	313	269
योग—	4598	18712	26912

पंचायतीराज वित्त समिति ने 1963 में राजस्थान में पंचायत समितियों का दौरा किया । समिति ने पाया कि उक्त वर्ष पंचायत समितियों ने प्रति व्यक्ति (Per capita) व्यय 4.28 से 4.78 रु० तक व्यय किया । करीब 20% राशि व्यवस्था खर्च में लगी । करीब 40% शिक्षा एवं शेष 40 प्रतिशत भाग अन्य विकास कार्यों में व्यय हुआ ।

पंचायत समिति की प्रशासनिक इकाई:—

प्रखण्ड कार्यालय पंचायत समिति को सामुदायिक विकास कार्यक्रम की प्रशासनिक सुविधा प्रदान करता है । प्रखण्ड विकास अधिकारी (बी० डी० ओ०)

इसका मुख्य प्रशासक होता है। इस कार्य में मदद के लिए आठ सहायक विकास अधिकारी (Extension Officers) होते हैं जो कि विविध कार्यों के विकास के लिए जिम्मेदार होते हैं। कृषि, सहकारिता, पशुपालन, आदि के लिए विस्तार अधिकारी होते हैं। ये सभी पंचायत समिति के कार्य में मदद करते हैं। पंचायत समिति के प्रशासनिक इकाई में प्रायः सभी राज्यों में निम्नलिखित पद एवं कार्य में संलग्न कर्मचारी होते हैं।

प्रशासनिक पद	प्रथम चरण के प्रखण्ड में (संख्या)	दूसरे चरण के प्रखण्ड में (संख्या)
1	2	3
1. प्रखण्ड विकास अधिकारी (वी० डी० ओ०)	1	1
2 विस्तार अधिकारी (Extension Officers) (1) कृषि (2) पशुपालन (3) सहकारिता (4) पंचायत (5) ग्रामीण उद्योग (6) ग्रामीण-इंजीनियरिंग (7) समाज शिक्षण (8) महिला एवं वाल-कल्याण।	8	8
3. ग्राम सेवक	10	10
4. ग्राम सेविका	2	2
5. प्रगति सहायक	1	1
6. अकाउन्टेन्ट	1	1
7. क्लर्क, कैशियर, टाइपिस्ट	3	3
8. चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी	3	3
9. पशु चिकित्सा सहायक	4	—
10. चिकित्सा सहायक	8	—
11. सफाई कामगार एवं चालक	3	1
योग—	44	30

प्रायः सभी राज्यों में प्रखण्ड विकास अधिकारी ही मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है। पंचायत समिति के कार्यों को मूर्त-रूप देने में प्रखण्ड अधिकारी सरकारी प्रतिनिधि होता है। तमिलनाडू में पंचायत यूनियन कमिश्नर (मुख्य-कार्यकारी अधिकारी) होता है। राजस्थान में मुख्य अधिकारी को विकास अधिकारी कहते हैं। प्रखण्ड विकास अधिकारी पंचायत समिति में महत्व की

भूमिका निभाता है। यह प्रशासनिक विभाग का प्रधान होने के साथ-साथ पंचायत के समस्त कार्यों के लिए जिम्मेदार होता है। प्रखण्ड अधिकारी एक ओर तो सरकारी कर्मचारी होने के कारण उसके प्रति जिम्मेदार होता है, दूसरी ओर उसे जन-प्रतिनिधियों के साथ काम करना पड़ता है।

प्रखण्ड विकास अधिकारी अन्य लोगों के सहयोग से पंचायत समिति के कार्यों को पूरा करता है। विकास अधिकारी के कार्यों को मुख्यत: नीचे लिखे शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं :—

1. पंचायत समिति के निर्णयों को हाथ में लेना, पूरा करना।
2. पंचायत समिति के सभी प्रकार के कार्यों की देख-रेख करना।
3. बजट तैयार करना।
4. पंचायत समिति के व्यवसायिक कार्यों की देख-भाल करना।
5. वार्षिक रिपोर्ट तैयार करना।
6. पंचायत समिति के निर्णयों में मदद एवं सलाह देना।
7. आपात-कालीन कार्यों को करना।

जिला परिषद्:—जिला परिषद् पंचायतीराज की सबसे ऊंची इकाई है। तीन स्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था में जिला परिषद् का संगठन जिला स्तर का होता है। नीचे से प्रारम्भ होने वाली पंचायतीराज का सबसे मौलिक संगठन ग्रामपंचायत का है। इसके बाद पंचायत समिति का स्थान आता है और उसके बाद जिला परिषद् का संगठन है। सभी राज्यों में यह संगठन जिला स्तर पर है, केवल असम में सब-डिविजन स्तर पर इस प्रकार का संगठन है। तमिलनाडू में इसे विकास जिला के नाम से जाना जाता है। आन्ध्र प्रदेश, बिहार, हरियाणा, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, प० बंगाल में इसे जिला परिषद् के नाम से जाना जाता है। गुजरात में इसे जिला पंचायत कहा जाता है। तमिलनाडू में जिला विकास कौंसिल के नाम से जाना जाता है। जिला परिषद् के मुखिया को विभिन्न राज्यों में विभिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। उन्हें सभापति, अध्यक्ष, प्रेसीडेन्ट, प्रमुख आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है।

संगठन:—जिला परिषद् में आमतौर पर पंचायत समितियों के प्रतिनिधि सदस्य होते हैं। समाज के पिछड़े एवं कमजोर समुदायों का भी इसमें प्रतिनिधित्व रहता है। पंचायत समिति अपने सदस्यों में से भी कुछ प्रतिनिधि जिला

परिषद् में भेजती है। पंचायत समिति का अध्यक्ष सभी राज्यों में जिला परिषद् का सदस्य होता है। इसके अतिरिक्त क्षेत्र का विधायक एवं संसद सदस्य भी जिला परिषद् का सदस्य होता है। प० बंगाल में ग्रामपंचायतों के अध्यक्षों में से भी दो प्रतिनिधि जिला परिषद् में आते हैं। महिला प्रतिनिधि भी आवश्यक होती है। इसी प्रकार पिछड़ी जाति का भी प्रतिनिधि जिला परिषद् में होता है।

आन्ध्र प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, और उत्तर प्रदेश में विधायक एवं संसद सदस्य जिला परिषद् का सदस्य होता है परन्तु किसी पद को ग्रहण नहीं करता है। गुजरात, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश में संसद सदस्य एवं विधायक को मत देने एवं पद ग्रहण का अधिकार नहीं है। परन्तु तमिलनाडू, मध्यप्रदेश एवं मैसूर में ये लोग मत दे सकते हैं। राजस्थान, असम और प० बंगाल में ये लोग (संसद सदस्य एवं विधायक) मतदान करने के साथ पद भी ग्रहण कर सकते हैं।

अनेक राज्यों में नगर पालिका, सहयोग समितियां, सहकारी समिति एवं सहकारी बैंक, जिला स्कूल बोर्ड आदि के प्रतिनिधि भी जिला परिषद् में लिये जाते हैं। जिला परिषद् में सरकारी प्रतिनिधियों को रखने का प्रावधान भी है। आन्ध्र प्रदेश में जिला अधिकारी (District Collector) जिला परिषद् का सदस्य होता है। तमिलनाडू, मैसूर, उड़ीसा, हरियाणा एवं पंजाब में भी जिला अधिकारी सदस्य होता है। उड़ीसा में एस० डी० ओ० भी सदस्य होता है पर इन्हें मत देने का अधिकार नहीं रहता है। मध्य प्रदेश में जिला स्तर का स्वास्थ्य, कृषि एवं विकास अधिकारी भी जिला परिषद् का सदस्य होता है पर इन्हें मत देने का अधिकार नहीं होता हैं। यही स्थिति राजस्थान की भी है।

प्राय: सभी राज्यों में जिला परिषद् के प्रतिनिधि अध्यक्ष एवं एक उपाध्यक्ष का चुनाव करते हैं। तमिलनाडू एवं मैसूर में जिलाधीश जिला परिषद् का अध्यक्ष होता है।

जिला परिषद् का कार्य:—पंचायतीराज की भावनाओं को देखते हुए जनता की शक्ति को अधिक मजबूत करने का प्रयास किया गया है। यही कारण है कि बलवंतराय मेहता समिति ने जो भावना व्यक्त की है उसके अनुसार ग्रामपंचायत एवं पंचायत समिति स्तर के संगठन को अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। जिला परिषद् का मुख्य रूप से समन्वय का काम माना गया है। यह राज्य एवं पंचायत समिति के बीच समन्वय स्थापित करता है।

जिला परिषद् के कार्यों के बारे में गहराई से जाँच करने पर यह साफ-तौर पर देखने को मिलता है कि विभिन्न राज्यों में इसके कार्यों की भिन्न-भिन्न स्थिति है। जिला परिषद् के कार्यों में एकरूपता देखने में नहीं आती है। मैसूर एवं तमिलनाडू में जिला परिषद् मुख्यतः राज्य एवं पंचायत समिति के बीच समन्वय का कार्य करता है। वह राज्य को जिले में विकास कार्यों के बारे में सलाह भी देता है। सलाह एवं समन्वय के कार्य के साथ-साथ शैक्षणिक कार्यों का संचालन स्वयं करता है। उच्च माध्यमिक शिक्षा एवं औद्योगिक प्रशिक्षण विद्यालयों का संचालन स्वयं करता है। महाराष्ट्र में जिला परिषद् पंचायतीराज की सबसे शक्तिशाली इकाई है। वह नियोजन, विकास कार्यक्रम को मूर्तरूप देने का काम करने के साथ-साथ सलाह एवं समन्वय का काम करता है। गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं प० बंगाल में जिला परिषद् प्रशासनिक कार्यों को भी करता है। असम, बिहार, हरियाणा, उड़ीसा एवं पंजाब में जिला परिषद् द्वारा पंचायत समिति का बजट स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार पंचायतीराज के सबसे उच्च-स्तरीय इकाई में विभिन्न राज्यों में उसके कार्य एवं दायित्वों में काफी भिन्नता है।

जिला परिषद् के कार्य के बारे में हाल के वर्षों में जो धारणा मजबूत हो रही है उसके अनुसार उसे और अधिक कार्यकारी शक्तियाँ प्रदान की जा रही हैं। सबसे पहले महाराष्ट्र ने जिला परिषद् को अधिक कार्यकारी शक्तियाँ प्रदान की थीं। हाल ही में राजस्थान में भी कानून में संशोधन किया गया और जिला परिषद् को अधिक कार्यकारी (Executive Functions) शक्तियाँ दी गयीं। इसी प्रकार पंजाब में भी यही नीति अपनायी गयी। जिला परिषद् को अधिक शक्ति प्रदान करने के अनेक कारण बताये गये हैं।*

पंचायत समिति की भाँति जिला परिषद् में भी कार्य संचालन के लिए उप-समितियों का गठन किया जाता है। शिक्षा, नियोजन, उद्योग, कृषि आदि कार्यों के लिए अलग-अलग उप-समिति होती है। विभिन्न राज्यों में इस प्रकार की उप-समितियों की संख्या 3 से 8 के बीच होती है। इन उप-समितियों के अलग-अलग अध्यक्ष होते हैं। कुछ राज्यों में जिला परिषद् के अध्यक्ष ही इन समितियों के भी अध्यक्ष होते हैं। प्रत्येक उप-समिति अपने कार्य के लिए जिम्मेदार होती है, उसकी योजना बनाती एवं स्वीकृत कर उसे मूर्तरूप देने का प्रयास करती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि महाराष्ट्र में पंचायतीराज की सबसे शक्तिशाली इकाई जिला परिषद् है। महाराष्ट्र में उप-समितियों के माध्यम से जिला परिषद् के कार्य को अधिक मजबूत बनाने का प्रयास किया गया है। यहाँ जिला परिषद् में निम्नलिखित उप-समितियों के माध्यम से कार्य किया जाता है—

*देखें, अगला अध्याय।

1. वित्त
2. कार्य (Works)
3. कृषि
4. सहकारिता
5. शिक्षा
6. स्वास्थ्य

जिला परिषद् का अध्यक्ष उप-समिति का पदेन सभापति होता है। कुछ उप-समितियों का सभापति जिला परिषद् का उपाध्यक्ष भी होता है। जिला परिषद् के प्रतिनिधियों में से उप-समितियों का गठन किया जाता है। उप-समिति में कुछ व्यक्ति बाहर से भी सहवरित (Co-opted) किये जाते हैं। सहायक कार्यकारी अधिकारी इसका पदेन सचिव होता है। उप-समितियों का गठन जिला परिषद् के प्रतिनिधि मतदान द्वारा करते हैं। महाराष्ट्र में इन जन-प्रतिनिधियों को ऑनरेरियम भी दिया जाता है। विभिन्न पदों के लिए निम्नलिखित मासिक ऑनरेरियम हैं*:—

पद	ऑनरेरियम रु०	अधिकतम म०किराया रु०	अधिकतम टी०ए० रु०
अध्यक्ष, जिला परिषद्	500	200	225
उपाध्यक्ष, जिला परिषद्	300	150	175
सभापति, उप-समिति	300	150	125
सभापति (स्टैंडिंग कमेटी)	300	100	100
उप-सभापति (स्टैंडिंग कमेटी)	150	—	50

आर्थिक व्यवस्था:—जिला परिषद् के वित्तीय स्रोत का मुख्य भाग राज्य सरकार से सहायता के रूप में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त राजस्व एवं अन्य करों का एक भाग भी जिला परिषद् को प्राप्त होता है। जिला परिषद् के बजट के अन्तर्गत योजनागत क्षेत्र में होने वाली राशि भी इसे मिलती है जो कि सम्बन्धित योजनाओं पर व्यय की जाती है। कई राज्यों में जिला परिषद् द्वारा कर भी लगाया जाता है। जिला परिषद् के वित्तीय स्रोतों को पांच श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं।

* विभिन्न राज्यों में मिलने वाली सुविधायें भिन्न-भिन्न हैं।

1. व्यवस्था पर होने वाले व्यय के मद में प्राप्त होने वाली राशि।
2. जनता से प्राप्त होने वाला दान एवं सहायता।
3. जिला परिषद् की स्वयं की सम्पत्ति से आय।
4. राज्य सरकार से कर्ज।
5. जिला परिषद् द्वारा लगाये गये कर, फीस आदि।

उपरोक्त स्रोतों के अतिरिक्त सहकारी योजनागत व्यय के लिए राज्य सरकार से धन प्राप्त होता है। जिला परिषद् की आय एवं व्यय की मात्रा राज्य में जिला परिषद् की स्थिति पर निर्भर करती है। जिन राज्यों में जिला परिषद् को अधिक अधिकार एवं कार्य सौंपा गया है, वहाँ अधिक वजट है। नमूने के तौर पर कुछ राज्यों के जिला परिषद् का वजट इस प्रकार था—

जिला परिषद् के वजट का नमूना—वर्ष 1961–62

क्रम		एक जिला का उदाहरण	वजट (लाख रु० में)
1.	आन्ध्र प्रदेश	पश्चिम गोदावरी	120
2.	महाराष्ट्र	पूना (1962–63)	213
3.	उड़ीसा	कटक	26
4.	पंजाव	लुधियाना	6
5.	उत्तर प्रदेश	मेरठ	37

नमूने के उपरोक्त वजट से यह वात प्रकट होती है कि विभिन्न राज्यों में जिला परिषद् की कार्यकारी स्थिति में पर्याप्त भिन्नता है। महाराष्ट्र जैसे प्रदेश में जिला परिषद् को कार्यकारी अधिकार पर्याप्त दिये गये हैं और इस प्रकार वहाँ के जिला परिषदों को पर्याप्त वजट दिया गया है। परन्तु पंजाव जैसे राज्यों में जिला परिषद् को अत्यन्त कम आर्थिक शक्तियां दी गयी हैं। कई राज्यों में जिला परिषद् की स्थिति के वारे में अभी तक राज्य सरकार के सामने स्पष्ट चित्र नहीं है। वजट में प्राथमिकता की दृष्टि से देखें तो यह साफ हो जाता है कि महाराष्ट्र में इसकी सवसे मजवूत स्थिति है।

छठा अध्याय

राज्यों में पंचायतीराज : एक मूल्यांकन

पंचायतीराज की व्यवस्था में राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता रखने का प्रयास किया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर तीन-स्तरीय व्यवस्था को स्वीकार किया गया है। इस सामान्य नीति को स्वीकार करने के वावजूद पंचायत को राज्य का विषय माना गया है। इस कारण विभिन्न राज्यों में पंचायतीराज की व्यवस्था में पूर्णतः एकरूपता नहीं है। विभिन्न राज्यों में पंचायतीराज की भिन्न-भिन्न स्थिति है। विभिन्न राज्यों में पंचायतीराज की स्थापना का समय भी एक नहीं है। सन् 1959 में राजस्थान में सबसे पहले पंचायतीराज की स्थापना हुई। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने दीप जलाकर इसका उद्घाटन किया था। इसके वाद क्रमशः अन्य राज्यों में पंचायतीराज की स्थापना होती गयी। पंचायतीराज की स्थापना राज्य की विधि के अनुसार की जाती है। राज्य सरकार इसे अपनी योजना के अन्तर्गत मूर्तरूप देती है। राज्य सरकारें इसके व्यवहारिक पक्षों पर विचार-विमर्श करती रही है और इसकी समस्याओं पर विचार करती रही है। यही कारण है कि विभिन्न राज्यों की सरकारों ने अपनी सुविधा के अनुसार इसे व्यवस्थित किया है। पंचायतीराज की विविध इकाईयों के कार्य, अधिकार, वजट आदि में भी भिन्नता पायी जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि देश के विभिन्न भागों में, विभिन्न राज्यों में, पंचायतीराज का प्रयोग करने का प्रयास किया जा रहा है। विकेन्द्रित समाज रचना के इस प्रयोग में पूरा देश शामिल हुआ है और इस वात की खोज की जा रही है कि पंचायतीराज के समग्र दर्शन को स्वीकार करते हुए समस्याओं को कैसे सुलझाया जाय।

पंचायतों के कार्य : पिछले पच्चीस वर्षो में ग्राम पंचायत के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक विकास के जो भी कार्यक्रम हाथ में लिये गये, इनके प्रभावों को देखकर कार्य की दिशा का अनुमान लगाया जा सकता है। ग्राम पंचायत का कार्य ग्रामीण जीवन के किन-किन पक्षों को छूना है, उसे उदाहरणस्वरूप उत्तर प्रदेश में पंचायतों के कार्य की संक्षिप्त जानकारी पर से देखा जा सकता है।

उत्तर प्रदेश में 1949-50 में गांव पंचायतों की स्थापना की गई है। यह प्रदेश समूचे भारतवर्ष में व्यवस्थित और वैधानिक पंचायतों की स्थापना में अग्रणी है, क्योंकि इसी प्रदेश में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 की व्यवस्थाओं से भी पूर्व, उत्तर प्रदेश पंचायतराज अधिनियम, 1947 के अनुसार, 15 अगस्त, 1947 से पंचायतें स्थापित हुई। प्रारम्भ में राज्य के 1,12,624 गांवों में 34,755 गांव सभायें तथा 8,225 न्याय पंचायतें स्थापित की गई। इन पंचायतों को स्थानीय स्वशासन की बुनियादी इकाई को महत्त्व दिया गया। और इस रूप में वे एक क्रियाशील सामुदायिक संस्था के रूप में गांवों के सर्वांगीण विकास कार्यों की व्यवस्था करने लगी।

पंचायतों का विस्तार : सन् 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना तथा 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम भी भारतीय गांवों के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य से चलाये गये। चूंकि इस सभी कार्यक्रमों की सफलता के लिए गाँव के पूरे समुदाय का विशेष सहयोग अपेक्षित था जिसकी मध्यस्थता के लिए पंचायतों का पुनर्गठन आवश्यक हो गया। अतएव 1955 में प्रदेशीय पंचायतों का पुनर्गठन किया गया और पहले जहाँ 1000 की न्यूनतम आबादी पर ग्राम सभाएं स्थापित की गई थीं वहाँ अब पंचायतों के दूसरे आम चुनावों के बाद 250 की न्यूनतम आबादी पर छोटे-छोटे क्षेत्रों में नई पंचायतें गठित की गई। फलत: इस प्रदेश में पंचायतों की संख्या 72800 से भी अधिक हो गई है और इस प्रकार इस समय भी इनकी संख्या 72,819 है। स्पष्ट है कि सम्पूर्ण भारत में सर्वाधिक संख्या व न्यूनतम आकार की पंचायतें इस प्रदेश में क्रियाशील हैं। यही नहीं, उत्तर प्रदेश में इस प्रकार पंचायतों की स्थापना और कार्यकलापों से प्रभावित होकर कई केन्द्रीय प्रशासित प्रदेशों में भी इनके अनुरूप पंचायतों का संगठन किया गया।

सन् 1961 में प्रदेश में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी उत्तर प्रदेश क्षेत्र समिति एवं जिला परिषद् अधिनियम, 1961 में लागू करके प्रदेश में पंचायती-राज व्यवस्था का भी श्रीगणेश हुआ। इस व्यवस्था में पंचायतों की स्थिति में और भी अधिक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। पहले जहाँ पंचायतें अपने सीमित साधनों के द्वारा ग्रामीण विकास का कार्य स्थानीय स्वशासन की इकाई के रूप में करती थी, वहाँ अब पंचायतीराज में उन्हें लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की बुनियादी इकाई का महत्व प्राप्त हो गया और विकास कार्यों के लिए अधिकाधिक साधन एवं अवसर तथा क्षेत्र समिति व जिला परिषद् का सशक्त संरक्षण प्रदान किया गया। इससे उनकी कार्य-कुशलता का विस्तार हुआ है।

पंचायतों की रजत जयन्ती : 1975 में इन संस्थाओं ने अपना रजत जयन्ती उत्सव मनाया। पंचायतों के इस रजत जयन्ती के उत्सव को स्थायित्व एवं व्यापकतम रूप देने के लिए यह निश्चय किया गया कि यह वर्ष (15 अगस्त, 1974 से 15 अगस्त, 1975) रजत जयन्ती वर्ष के रूप में मनाया जाय और इस अवधि में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कार्य एवं अभियान चलाये जायें जो ग्रामीण नवनिर्माण और विकास की दिशा में एक नया कीर्तिमान स्थापित कर सकें।

ठोस रचनात्मक कार्यों की दृष्टि के चौथाई शताब्दी के दौरान प्रदेश की पंचायतों ने सिंचाई की सुविधा के लिए 782 ट्यूब वेल, 254 पम्पिंग सेट, 1216 रहट, 1356 कुएं और 2107 तालाबों आदि का निर्माण कार्य किया है। साथ ही 5377 कि०मी० लम्बी गूल का निर्माण एवं 16234 कि०मी० गूल की सफाई तथा 112878 बंधियों का निर्माण भी इस अवधि में करके प्रदेश में कृषि उत्पादन बढ़ाने में अपना योगदान दिया है।

ग्रामीण क्षेत्र में आने-जाने की सुविधाओं के विस्तार के लिए पंचायतों ने श्रमदान द्वारा 54395 कि०मी० लम्बी पक्की सड़क और 83395 कि.मी. कच्ची सड़क का निर्माण करके एक स्तुत्य प्रयास किया है। साथ ही उन्होंने 6550 पुलों एवं 400053 पुलियाओं का निर्माण भी इसी अवधि में सम्पन्न किया है।

स्थानीय स्वच्छता एवं सफाई की दृष्टि में पंचायत द्वारा 11217 कि. मी. क्षेत्र में खड़जा बिछाया गया, पानी की सुविधा के लिए उन्होंने 177587 पक्के कुओं का निर्माण एवं 226591 पक्के कुओं की मरम्मत का कार्य किया है। पक्के कुओं के अतिरिक्त इसी अवधि में पंचायतों ने 15937 कच्चे कुओं के निर्माण एवं 24185 कुओं की मरम्मत तथा 320846 कच्चे कुओं की सफाई करके पेय-जल की सुविधा उपलब्ध करायी है। विभिन्न अंचलों में पंचायतों ने हैंड-पम्प लगवाने में भी रुचि ली है। फलस्वरूप अब तक उनके द्वारा प्रदेश में 288022 हैंड-पम्पों का प्रबन्ध किया गया है। इस सम्बन्ध में कुछ अन्य कार्य भी पंचायतों ने किये हैं जिसमें 37928 कि. मी. क्षेत्र पक्की नालियां बनाई गई और 131435 पी० आर० ए० आई० टाइप शौचालय बनवाये गये। इन विभिन्न कार्यों के साथ ही साथ 159672 एकड़ क्षेत्र में सामुदायिक वन तथा 318509 एकड़ क्षेत्र में सामुदायिक उद्यान भी पंचायतों ने लगवाया और पशु सुधार के लिए 1763 सांढ़ों का प्रबन्ध भी उनके द्वारा किया गया।

विगत वर्षों में उक्त रचनात्मक कार्यों की शृङ्खला में पंचायतों ने कतिपय अग्रगामी प्रयत्न करके देश की पंचायतों के सूक्ष्म एवं प्रेरणास्पद आदर्श भी

प्रस्तुत किया है। इस दिशा में औद्योगिक विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को रचनात्मक मोड़ देने एवं स्थानीय आत्मनिर्भर तथा अपने आय के नवीन स्रोत उपलब्ध करने आदि के वहुद्देश्य की पूर्ति के लिए पंचायत उद्योगों की स्थापना का प्रशंसनीय प्रयास उनके द्वारा किया गया है। यह कार्यक्रम 1961 में प्रारम्भ किया गया था और इस समय प्रदेश में 287 पंचायत उद्योगों की 5130 ग्राम सभाओं के मिले-जुले प्रयत्न से स्थापना की गई है, जहाँ ग्रामीण आवश्यकता की वस्तुओं के साथ-साथ लगभग 1500 लोगों की जीविका का स्थानीय साधन भी उपलब्ध हुआ है। अब तक इन उद्योगों पर लगभग 2.5 करोड़ रुपये का माल तैयार और लगभग इतनी ही धनराशि के माल की बिक्री भी हो चुकी है जिससे इन संस्थाओं को लगभग 14 लाख रुपये का शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ है।

प्रदेश की पंचायतों को संस्थागत ऋण की ठोस सुविधा उपलब्ध कराने की दृष्टि से वर्ष 1973 में प्रदेश स्तर पर एक पंचायतीराज वित्त निगम की स्थापना भी की गई है। निगम की अधिकृत पूँजी 50 लाख रुपये है और अब तक लगभग 46 लाख रुपये अंशदान के रूप में निगम के कोष में पंचायतीराज संस्थाओं द्वारा जमा हो चुके हैं।

रजत-जयन्ती वर्ष में लक्ष्य और कार्यक्रमः—पंचायतों की रजत-जयन्ती के इस अवसर पर उनको पूज्य बापू जी की भावना के अनुरूप प्रदेश में सच्चा ग्राम-स्वराज्य लाने के लिए पर्याप्त लग्न, त्याग और परिश्रम से कार्य का प्रयास प्रारम्भ किया गया। वर्तमान नई परिस्थितियों को देखते हुए उन्हें अपने विकास कार्यों के स्वरूप को तदनुरूप संशोधित रूप में ही निर्धारित करना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अब पंचायतों को विकास कार्यों के लिये अपने ही साधनों पर अधिक निर्भर होने की आवश्यकता स्पष्ट हो गई है। क्योंकि सरकार के वर्तमान आर्थिक संकट को दृष्टि में रखते हुए किसी अन्य प्रकार से आर्थिक सहायता प्राप्त होने की सम्भावना न्यून ही है। अतः आगामी वर्षों में पंचायतों द्वारा अपने ही साधनों, जैसे श्रमदान, चन्दा अथवा अन्य स्थानीय साधन आदि से निर्माण कार्यों को पूरा करने का प्रयत्न किया जाना आवश्यक हो गया है जिससे हमारी पंचायतें स्वावलम्बन की ओर बढ़ सकें।

रजत-जयन्ती वर्ष में पंचायतों की उपलब्धियां:—रजत-जयन्ती वर्ष में प्रदेश के ग्राम पंचायतों को जिन अधूरे निर्माण कार्यों को पूर्ण करके तथा नवीन निर्माण कार्यों को पूरा कराने के लिए विशेष रूप से प्रेरित किया गया था, उनके सम्बन्ध

में पंचायतों ने बड़ी जागरूकता का परिचय दिया है। रजत-जयन्ती वर्ष में उत्तर प्रदेश में इस सम्बन्ध में ग्राम पंचायतों द्वारा प्राप्त की गई रचनात्मक उपलब्धियों का एक सूक्ष्म ब्यौरा इस प्रकार है।

क्र. सं.	निर्माण कार्य	अधूरे निर्माण कार्य, जो पूरे किये गये	नये निर्माण कार्य, जो पूरे किये गये	अधूरे कार्य, जिन पर कार्य चल रहा है	नये कार्य, जिन पर कार्य हो रहा है
1	2	3	4	5	6
1.	सड़कों का निर्माण	240	240	480	540
2.	सड़कों की मरम्मत	980	280	600	850
3.	कूप निर्माण	320	340	980	640
4.	कूप मरम्मत	1700	1900	1000	1200
5.	हैण्ड पम्प	1200	2100	900	1200
6.	खड़ंजा निर्माण	2500	240	200	650
7.	स्कूल भवन निर्माण	320	332	120	240
8.	स्कूल भवन मरम्मत	1000	600	1600	900
9.	पुलिया का निर्माण	320	640	240	750
10.	पुलियों की मरम्मत	600	1800	650	1650
11.	पंचायत भवन निर्माण	120	220	80	180
12.	पंचायत भवन मरम्मत	400	1100	150	520
13.	पी०आर०ए०आई० टाईप शौचालय	2020	4260	1400	5680
14.	खड़ंजा मरम्मत	1700	2600	800	2480
15.	गूल निर्माण	80	360	50	690
16.	हौज निर्माण	80	100	40	350
17.	पाइप लाइन	100	—	—	280
18.	विद्युतीकरण	960	—	—	—
19.	दुकान निर्माण (गांवों में)	500	240	250	780
20.	पक्की नाली	240	120	130	560
21.	बन्धी निर्माण	400	40	50	450
22.	लिंक रोड़	200	200	240	950
23.	तालाब जो गहरे किये गये	980	1000	1050	1200

अपेक्षा यह रखी जानी चाहिए कि ग्राम पंचायतें अपने लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ेगी। विभिन्न राज्यों में हुए कार्यों का विवरण देना सम्भव नहीं है। संक्षेप में पंचायतीराज के विभिन्न स्तर की इकाईयों की एक संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत करना उचित होगा।

ग्राम सभा :–पंचायतीराज व्यवस्था में ग्रामस्तर पर ग्रामसभा का प्रावधान किया गया है। केरल, तमिलनाडू, राजस्थान एवं मैसूर को छोड़कर शेष सभी राज्यों में ग्रामस्तर पर ग्रामसभा को मजबूत बनाने का प्रयास किया गया है। ग्रामसभा में ग्राम के सभी बालिग शामिल होते हैं। जैसा कि पिछले अध्याय में कहा गया है ग्रामसभा को ग्रामस्तर पर स्वशासन को मूर्तरूप देने का माध्यम बनाने का प्रयास किया गया है। इस दृष्टि से यह अपेक्षा रखी गयी है कि ग्रामसभा कम से कम वर्ष में एक बार बैठे और ग्राम के सर्वांगीण विकास पर विचार करे। यह भी माना गया है कि ग्रामसभा अपना बजट भी बनाये। कुछ प्रदेशों में (जैसे बिहार) ग्रामसभा अपनी कार्य समिति भी चुनती है। परन्तु ग्रामसभा की व्यवस्था के बारे में सभी राज्यों की एक सी स्थिति नहीं है।

ग्रामसभा के सामने मुख्य समस्या ग्रामसभा की सक्रियता की आती है। ऐसा देखने में आता है कि ग्रामसभा में सदस्यों की कम उपस्थिति रहती है। ग्रामसभा के कार्यों के लिए बनी दिवाकर समिति* ने स्वीकार किया है कि ग्रामसभा की मूल भावना की पूर्ति नहीं हो पा रही है। इसकी बैठकों में उपस्थिति अत्यन्त अल्प रहती है। इसमें गाँव के सभी लोगों का सहयोग, स्वशासन की व्यवस्था में मिले तथा सबकी समस्याएं सुनी जायें, यह अपेक्षा पूरी नहीं हो पाती है। इस कठिनाई को कम करने की दृष्टि से कुछ राज्यों में ग्रामसभा को कार्य समिति चुनने का प्रावधान है। परन्तु ग्रामसभा को अभी जो अधिकार एवं साधन प्राप्त हैं उसमें ग्रामसभा ग्रामस्तर पर समग्र विकास की योजना नहीं बना पाती है। अन्य कई प्रकार की कठिनाईयों के कारण ग्रामसभा का महत्व कम होता गया है। ग्रामस्तर पर साधन, योग्यता, नेतृत्व, नियोजन की क्षमता की कमी आदि कारणों से भी ग्रामसभा की सीमायें बढ़ जाती हैं। फिर पंचायतीराज व्यवस्था में ग्रामसभा को मूल इकाई न मान कर ग्राम पंचायत, पंचायत समिति एवं कुछ राज्यों में जिला परिषद् को प्रमुख स्थान दिया गया है। इस प्रकार ग्रामसभा पंचायतीराज की मौलिक इकाई होते हुए भी इस पूरी व्यवस्था में इसका गौण स्थान है। यदि ग्रामसभा के महत्व को स्वीकार करना है तो उसे अधिक सक्रिय

* रिपोर्ट ऑफ द टीम आन द पोजीशन ऑफ ग्रामसभा इन पंचायती राज मूवमेंट; 1963.

एवं सक्षम बनाना होगा। वास्तव में यदि जन-सहयोग एवं स्वशासन की कल्पना को मूर्तरूप देना है तो ग्रामस्तर पर पंचायतीराज जो मजबूत करना होगा।

ग्राम पंचायत:-व्यावहारिक रूप से ग्राम पंचायत को पंचायतीराज की सबसे मजबूत इकाई बनाने का प्रयास किया गया है। इसमें एक या एक से अधिक गाँव होते हैं और पंचायत के नागरिक एक कार्य समिति (पंचायत) का चुनाव करते हैं। थोड़ी बहुत भिन्नता होते हुए सभी राज्यों में पंचायतों की व्यवस्था प्राय: एक समान है। पंचायतों के संगठन कार्य के बारे में पिछले अध्याय में जान चुके हैं। ग्राम पंचायत का क्षेत्र कितना बड़ा हो, इस बारे में मतभेद है। कुछ लोग इसे एक गाँव तक सीमित रखना उचित मानते हैं। परन्तु कुछ की राय में छोटे-छोटे गाँवों को अलग-अलग पंचायत बनाना उपयोगी और सुविधाजनक नहीं होगा। विभिन्न राज्यों ने अपनी परिस्थिति के अनुसार पंचायत का गठन किया है। आम-तौर पर एक पंचायत कम से कम एक हजार की आबादी (उ० प्र०) पर गठित की जाती है और अधिकतम आबादी पाँच हजार (बिहार, जम्मू-कश्मीर) तक है। अन्य राज्यों में इसके बीच की सीमा है। विभिन्न राज्यों में पंचायतों के अधिकारियों की समान स्थिति नहीं है। पंचायत के प्रमुख को अनेक नामों से पुकारा जाता है। पंचायत के कार्य को संभालने के लिए प्राय: सभी राज्यों में पंचायत सचिव की व्यवस्था है। विभिन्न राज्यों में सचिव की नियुक्ति, योग्यता, वेतन कार्य आदि के बारे में अलग-अलग नियम हैं। इसी प्रकार पंचायतों के कार्यकाल के बारे में भी एकरूपता नहीं है। कुछ राज्यों में पंचायतों का कार्यकाल 3 वर्ष का है, कुछ राज्यों में 4 वर्ष का, तो कुछ राज्यों में यह कार्यकाल 5 वर्षों का है।

कार्य को व्यवस्थित करने की दृष्टि से विविध कार्यों के लिए विविध समितियों का गठन का प्रावधान है। इन समितियों के माध्यम से पंचायत अपने कार्यों को पूरा करता है। बिहार में इस प्रकार की समितियों की संख्या 8 है, जबकि गुजरात एवं मैसूर में 3 समितियां हैं। राजस्थान में कृषि कार्य के लिए एक समिति होती है, अन्य समितियाँ नहीं होती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पंचायत की कार्य-पद्धति में समितियों के निर्माण में एकरूपता नहीं है।

पंचायत को सौंपे गये कार्यों को करने के लिए जो व्यवस्थापक वर्ग की व्यवस्था है उसमें दो प्रकार के लोग हैं। एक, जन-प्रतिनिधि जो कि प्राय: आनरेरी रूप में ग्राम की सेवा में संलग्न होते हैं। पंचायत का मुखिया, पंच या विविध समितियों के सदस्य इस श्रेणी में आते हैं। ये लोग अपने निजि व्यवसाय के

साथ-साथ खाली समय में पंचायत के काम को देखते हैं। इस परिस्थिति में यह देखने में आता है कि ये लोग ग्राम पंचायत के काम में पर्याप्त समय नहीं दे पाते हैं और ग्रामपंचायत का काम अच्छी तरह नहीं हो पाता है। दो, राज्य सरकार की ओर से पंचायत कानून के तहत पंचायत सचिव की नियुक्ति की जाती है, जिन्हें वेतन मिलता है। विभिन्न राज्यों में सचिव की समान स्थिति नहीं है। कुछ राज्यों में तो सचिव को मात्र आनरेरियम दिया जाता है।

कुछ राज्यों में उसका कार्य अल्पकालीन माना जाता है परन्तु कुछ राज्यों में सचिव का पद-पूर्णकालीन कर्मचारी का भी है। एक सचिव को एक से अधिक पंचायतों का काम देखने की व्यवस्था भी कई राज्यों में है। इस परिस्थिति में अनुभव यह है कि सचिव काम को व्यवस्थित ढंग से नहीं कर पाता है। एक ओर जन-प्रतिनिधियों द्वारा पूरा समय नहीं दे पाने के कारण और दूसरी ओर सचिव की भी अच्छी व्यवस्था नहीं होने के कारण ग्रामपंचायत का काम रुकता है। पंचायत सचिव एवं जन-प्रतिनिधियों के बीच एकरूपता की कमी रहती है। गाँव की गुटबन्दी, राग-द्वेष का शिकार सचिव होता है और वह अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह नहीं निभा पाता है।

ग्रामपंचायत की कार्यकारी व्यवस्था को अधिक सुचारू रूप से चलाने के लिये कई तरह के सुझाव दिये जाते हैं। यह सुझाव दिया जाता है कि पंचायत के सचिव को जिला स्तर पर नियुक्त किया जाना चाहिए और उन्हें पूरे समय का कर्मचारी मानना चाहिए। एक सचिव को उतने गांवों का काम ही सौंपना चाहिए, जितने कि वह संभाल सके।

ग्रामपंचायत के कार्य की दृष्टि से प्रायः सभी राज्यों की एक-सी स्थिति है। सभी राज्यों ने मेहता समिति के सुझावों को स्वीकार किया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है ग्रामपंचायत के कार्यों को मुख्य दो भागों में बांट सकते हैं। एक, व्यवस्था एवं विकास और दो, न्याय। सभी राज्यों में ये दोनों कार्य ग्रामपंचायत को सौंपे गये हैं। न्याय कार्य के अतिरिक्त ग्रामपंचायतें पानी, सफाई, भूमि व्यवस्था, प्रकाश, राहत कार्य, ग्राम सड़क एवं गलियों का निर्माण, प्राथमिक विद्यालय का निरीक्षण, पिछड़ा वर्ग कल्याण तथा अन्य विकास कार्यों को पूरा करती हैं। इसके लिए पंचायत समिति से आर्थिक मदद प्राप्त होती है। ग्रामपंचायत स्तर पर लगने वाले करों से भी कुछ आय होती है। न्याय कार्य में प्रायः सभी राज्यों में न्याय पंचायत के गठन का प्रावधान है। एक न्याय पंचायत में एक से अधिक ग्रामपंचायतें भी होती हैं।

स्थानीय स्वशासन की प्राथमिक इकाई के रूप में ग्रामपंचायत को सुव्यवस्थित करने का प्रयास पंचायतीराज के अन्तर्गत किया गया है, लेकिन अब तक के अनुभव के आधार पर यह मान्यता बन रही है कि ग्रामपंचायतों को अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने में अपेक्षित सफलता नहीं मिल पा रही है। कुछ राज्यों में (महाराष्ट्र) तो ऊपर की इकाई, जैसे जिला परिषद् को अधिक मजबूत बनाने का प्रयास प्रारम्भ किया गया है। ग्रामपंचायत स्तर पर कितनी सफलता मिलती है, इसी पर पंचायतीराज की सफलता निर्भर है। विभिन्न समितियों एवं विद्वानों ने ग्रामपंचायत के सम्मुख आने वाली कठिनाईयों एवं उसकी कमजोरियों को समझा है और उसे दूर करने का सुझाव दिया है। इनकी राय में नीचे लिखी कमजोरियां दूर की जायें एवं सुविधायें दी जायें तो ग्रामपंचायतों को सफलता मिल सकती है :—

1– सामुदायिक भावना का विकास किया जाय।
2– स्थानीय गुटबन्दी कम की जाय।
3– ग्रामपंचायतों को अधिक आर्थिक साधन उपलब्ध कराया जाय।
4– जन-प्रतिनिधियों एवं कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया जाय।
5– जन-भावना एवं जन-सेवा की भावना विकसित की जाय।
6– सामाजिक तनाव को दूर किया जाय।
7– राजनीतिक स्तर पर गुटबन्दी दूर की जाय।
8– सही नेतृत्व दिया जाय।
9– सरकारी कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त हो।

पंचायत समिति :—पंचायतीराज व्यवस्था के अन्तर्गत यह मध्यवर्ती इकाई है। पंचायत समिति के नीचे ग्रामपंचायत और ऊपर जिला परिषद् का संगठन है। व्यावहारिक स्तर पर देखें तो कार्य संचालन में पंचायत समिति का सर्वप्रमुख स्थान है। नियोजन एवं उसकी पूर्ति का मुख्य कार्य पंचायत समिति के माध्यम से ही किया जाता है। विभिन्न राज्यों में इस स्तर की इकाई को विविध नामों से पुकारा जाता है, जैसे अंचल पंचायत, अंचल परिषद्, क्षेत्र समिति, पंचायत समिति, जनपद पंचायत, पंचायत यूनियन कौंसिल आदि।

पंचायत समिति के गठन, क्षेत्र विस्तार एवं कार्य सम्बन्धी व्यवस्था में विभिन्न राज्यों में भिन्नता है। सामान्य-तौर पर ग्रामपंचायतों के प्रतिनिधि, पिछड़ा समुदाय का प्रतिनिधि, विधान सभा के सदस्य तथा कई राज्यों में सरकारी एवं अर्धसरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधि पंचायत समिति में आते हैं।

कुछ सम्बन्धित अधिकारी भी पदेन सदस्य होते हैं। पंचायत समिति का कार्यकाल विभिन्न राज्यों में 3 से 5 वर्षों का होता है। पंचायत समिति आम-तौर पर दो प्रकार से कार्यों का सम्पादन करता है। एक, कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो कि वह स्वयं चलाता है। जैसे—विद्यालय की व्यवस्था, खास प्रकार का उद्योग, बड़ी योजनायें आदि। इस प्रकार के कार्य पंचायत समिति या इस स्तर के संगठन द्वारा स्वयं किया जाता है। दो, पंचायतीराज की व्यवस्था के अनुसार योजनाओं को कार्यरूप में परिणित करने की मुख्य जिम्मेदारी ग्राम पंचायत की होती है। अतः अधिकांश योजनायें ग्राम पंचायत द्वारा पूरी की जाती हैं। ऐसी स्थिति में पंचायत समिति इस कार्य में ग्राम पंचायतों की सहायता करती है। पंचायतों को यहां से साधन एवं सुविधायें प्राप्त होती हैं। योजना का निर्माण, स्वीकृति एवं उसकी पूर्ति के लिए आर्थिक व्यवस्था पंचायत समिति के माध्यम से की जाती है। पंचायत समिति के पास इसके लिए सरकारी एवं अन्य स्वयंसेवी एजेन्सियां होती हैं जो कि इस काम में मदद करती हैं। पंचायत समिति के पास इस कार्य के लिये पर्याप्त साधन एवं व्यवस्था रहती है। इन साधनों को ग्राम पंचायतों को देने का कार्य पंचायत समिति करती है। पंचायत समिति अपने कार्यों का संचालन प्रायः विविध उपसमितियों द्वारा करती है। ये उपसमितियां अलग-अलग कार्यों के लिए बनती हैं।

पंचायत समिति के कार्य में अध्यक्ष की प्रमुख भूमिका होती है। सरकारी प्रतिनिधि के रूप में प्रखण्ड अधिकारी होता है। इस प्रकार पंचायत समिति में सरकारी एवं जनप्रतिनिधियों की एक बड़ी टीम होती है जो कि कार्य सम्पादन का कार्य करती है। यहां जनप्रतिनिधियों एवं सरकारी कर्मचारियों के बीच समन्वय की समस्या रहती है। पंचायत समिति के कार्यों को व्यवस्थित रूप से संचालन एवं नियन्त्रण की जिम्मेदारी राज्य सरकार की होती है। विभिन्न राज्यों में विभिन्न स्तर के सरकारी अधिकारी पंचायत समिति के कार्यों की देख-रेख करता है, उसकी व्यवस्था करता एवं उस पर नियंत्रण रखता है। गुजरात में विकास आयुक्त और उत्तर प्रदेश में पंचायत निदेशक को पंचायत समिति को निरस्त करने का अधिकार है। इसी प्रकार प्रशासनिक व्यवस्था की देख-रेख की जिम्मेदारी जिला स्तर के विभिन्न अधिकारियों की होती है।

पंचायत समिति के समक्ष कई प्रकार की समस्यायें हैं जिन्हें आज भी सुलझाना है। विभिन्न राज्यों में व्यवस्थागत भिन्नता होने के बावजूद सामान्य व्यवस्था प्रायः सभी राज्यों में एक समान है। व्यावहारिक परिस्थिति यह बनती है कि जनप्रतिनिधि एवं सरकारी अधिकारियों की जिम्मेदारी, अधिकार एवं

नियन्त्रण के अन्तर्गत पंचायत समिति का संचालन करना रहता है। ऐसा देखने में आया कि पंचायत समिति के कार्यों में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां आती हैं। पंजाब प्रशासनिक सुधार आयोग ने पंचायत समिति की कमियों की ओर ध्यान दिलाया है और उसे दूर करने का सुझाव दिया है। आयोग का मानना है कि पंचायत समिति के कर्मचारियों पर एक से अधिक अधिकारियों का नियंत्रण एवं मार्ग-दर्शन से कार्य में बाधा आती है। इन अधिकारियों पर राजनीतिक दबाव पड़ने के कारण कार्य में कठिनाई आती है। एक बड़ी कठिनाई विभिन्न अधिकारियों एवं विभागों में समन्वय की कमी की है। विभिन्न रचनात्मक कार्यों के लिए आर्थिक साधनों की कमी के कारण भी कठिनाई बढ़ती है।

वित्तीय साधनों की कमी के कारण योजनायें पूरी नहीं हो पाती हैं। आपसी गुटबन्दी, दलगत राजनीति एवं राग-द्वेष के कारण कार्य एवं निर्णय में बाधा आती है। पंजाब में पंचायतीराज अध्ययन दल ने तो अपनी रिपोर्ट में यहाँ तक कहा है कि पंचायत समिति के मौजूदा स्वरूप को समाप्त कर दिया जाय। इसके स्थान पर एक सलाहकार एवं समन्वय बोर्ड का सुझाव दिया है।

पंचायत समिति की मौजूदा स्थिति को देखते हुए इस बात की आवश्यकता है कि इसके कार्य, संगठन आदि पर विचार किया जाय और उसे गति प्रदान करने का प्रयास किया जाय। विभिन्न राज्यों में पंचायत समिति के कार्यों में काफी सीमा तक एकरूपता होने के कारण समस्याओं में भी समानता है।

जिला परिषद् :—जिला परिषद् पंचायतीराज के अन्तर्गत सबसे उच्चस्तरीय इकाई है। यह इकाई जिला स्तर की है। परन्तु कुछ राज्यों में इसे विकास जिलों के रूप में संगठित किया गया है, जैसे तमिलनाडू। इस स्थिति में विकास जिलों की संख्या सामान्य जिलों से अधिक हो जाती है। लेकिन पंचायतीराज की व्यवस्था के अनुसार यह उच्चतम स्तर का संगठन है। इस स्तर के संगठन में पंचायत समितियों के प्रतिनिधि, विधायक, पिछड़े एवं कमजोर वर्ग के प्रतिनिधि, सरकारी संस्थायें एवं अन्य व्यक्ति होते हैं। विभिन्न राज्यों में इसके गठन में प्रतिनिधित्व के बारे में समानता नहीं है।

जिला परिषद् के कार्य एवं अधिकार की दृष्टि से भी विभिन्न राज्यों की स्थिति एक समान नहीं है। कई राज्यों में हाल के वर्षों में जिला परिषद् को अधिक मजबूत बनाने का प्रयास किया गया है। जैसा कि पिछले अध्याय में

कहा गया है कि महाराष्ट्र जैसे राज्य में जिला परिषद् को काफी मजबूत बनाया गया है और इसमें काफी सीमा तक जिला स्तर के संगठन को केन्द्र विन्दु माना गया है।

लेकिन सामान्य स्थिति यह है कि जिला परिषद् को सीमित कार्य सौंपा गया है। वह एक सलाहकार एवं मार्गदर्शक के रूप में कार्य करे, इस नीति को स्वीकार किया गया है। वलवन्तराय मेहता समिति ने जिला परिषद् को समन्वय एवं निरीक्षण की मजवूत इकाई बनाने का सुझाव दिया है, लेकिन अनुभव के वाद राज्य सरकारों ने उसे कई प्रकार के कार्य भी सौंपे, जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कई राज्यों ने जिला परिषद् को ही सबसे मजवूत इकाई वनाया है। विभिन्न राज्यों की इस दिशा में सोचने की जो प्रवृत्ति है, उस पर से यह कहा जा सकता है कि जिला परिषद् को अधिक मजवूत वनाने, उसे अधिक अधिकार एवं कार्य सौंपने का विचार मजवूत होता जा रहा है। गुजरात, पंजाब, विहार, आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में यह विचार मजवूती से जड़ पकड़ रहा है कि जिला परिषद् को मजवूत वनाया जाय। यह मान्यता वन रही है कि पंचायत समिति या ताल्लुका स्तर पर आर्थिक, मानवीय, तकनीक तथा प्रशासनिक व्यवस्था अच्छी तरह नहीं हो पाती है। एक वात यह भी कही जाती है कि नीचे की इकाईयों (पंचायत समिति या ग्रामपंचायत) में विविध कार्यों, योजनाओं सरकारी एवं गैरसरकारी एजेंसियों, वित्तीय साधनों के साथ समन्वय स्थापित नहीं हो पाता है। अर्थात् इस स्तर पर विकास एवं व्यवस्था की उचित व्यवस्था नहीं हो पाती है। नेतृत्व की दृष्टि से भी जिला स्तर की इकाई अधिक मजवूत हो सकती है। कार्य-क्षमता की दृष्टि से जिला स्तर का संगठन होने पर सुविधायें एवं अनुकूलतायें वढ़ जाती हैं। उक्त कारणों से जिला परिषद् को मजवूत वनाने की प्रवृत्ति वढ़ रही है। यह प्रवृत्ति पंचायतीराज की मूल कल्पना से मेल नहीं खाती है। अतः यह प्रयास किया जाना आवश्यक है कि पंचायतीराज की प्राथमिक इकाई (ग्रामपंचायत) को अधिक सक्षम एवं सक्रिय वनाया जाय।

विभिन्न राज्यों में पंचायतीराज की स्थापना

क्र० सं०	राज्य	विधान वनने का वर्ष	पंचायतीराज लागू होने की तिथि एवं वर्ष
1.	आन्ध्र-प्रदेश	आन्ध्र प्रदेश पंचायत समिति एवं जिला परिषद् विधान, 1959	1 नवम्वर 1959

2.	असम	असम पंचायत विधान, 1959	×
3.	बिहार	बिहार पंचायत समिति एवं जिला परिषद् विधान, 1961	15 अगस्त 1964
4.	गुजरात	गुजरात पंचायत विधान, 1960	—
5.	जम्मू एवं कश्मीर	ग्राम पंचायत विधान, 1958	—
6.	केरल	केरल पंचायत विधान, 1962	कार्य रूप में नहीं
7.	मध्य प्रदेश	मध्य प्रदेश पंचायत विधान, 1962	1 अप्रैल 1970
8.	मद्रास	मद्रास जिला विकास समिति विधान, 1958	1 दिसम्बर 1959
9.	मैसूर	मैसूर ग्राम पंचायत एवं स्थानीय समिति विधान, 1959	1 नवम्बर 1959
10.	महाराष्ट्र	महाराष्ट्र जिला परिषद् एवं पंचायत समिति विधान, 1961	—
11.	उड़ीसा	उड़ीसा पंचायत समिति एवं जिला परिषद् विधान, 1959	7 जनवरी 1961
12.	पंजाब	पंजाब पंचायत समिति एवं जिला परिषद् विधान, 1961	2 अप्रैल 1961
13.	उत्तर प्रदेश	उत्तर प्रदेश क्षेत्रीय समिति एवं जिला परिषद् विधान, 1961	—
14.	प० बंगाल	प० बंगाल जिला परिषद् विधान, 1963	जनवरी 1964
15.	राजस्थान	राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद् विधान, 1959	2 अक्टूबर 1959

मध्यवर्तीय संगठन के विविध नाम

1.	आन्ध्र प्रदेश	ब्लॉक कौंसिल या प्रखण्ड समिति
2.	असम	आंचलिक पचायत
3.	बिहार	पंचायत समिति

4. गुजरात	ताल्लुका पंचायत
5. जम्मू कश्मीर	प्रखण्ड पंचायत परिषद्
6. मध्य प्रदेश	जनपद सभा
7. मद्रास	पंचायत समिति या पंचायत यूनियन कौंसिल
8. महाराष्ट्र	जिला परिषद्
9. मैसूर	ताल्लुका विकास परिषद्
10. उड़ीसा	पंचायत समिति
11. पंजाब	तहसील परिषद्
12. उत्तर प्रदेश	क्षेत्रीय समिति
13. पश्चिमी बंगाल	आँचलिन परिषद्
14. राजस्थान	पंचायत समिति

सातवां अध्याय

गांव की परिस्थिति और पंचायतीराज

ग्राम समाज और भूमि व्यवस्था :— यह बात पहले भी कही जा चुकी है कि भारतीय समाज का मुख्य भाग गांवों में बसता है। जो लोग गांव में रहते हैं उनका सीधा सम्बन्ध भूमि से जुड़ता है। आदि काल से कृषि जीविका का मुख्य आधार रहा है और आज भी है। भारत की सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति में जमीन की समस्या अधिक विकट हो गई है। एक कारण यह भी है कि यहां आबादी का बड़ा भाग खेती पर निर्भर रहता है। इस परिस्थिति में यदि जमीन का बटवारा असमान हो तो समस्या विकट हो जाती है। अंग्रेजी काल में भूमि कुछ लोगों के हाथ में अधिक केंद्रित होती गई, परिणामस्वरूप आबादी का शेष भाग धीरे-धीरे भूमिहीन या अलाभकर जोत की श्रेणी में आता गया। जोतने वाले के हाथ से जमीन किस प्रकार निकलती गयी, इसका वर्णन यहां सम्भव नहीं। यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आजादी के पहले भूमि व्यवस्था इस प्रकार की थी जिससे समाज के खास समृद्ध समुदाय के पास भूमि का केन्द्रीकरण होता गया। इस स्थिति को समाप्त करने की जिम्मेदारी आजाद भारत की सरकार पर आयी। इस दिशा में प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ से ही कदम उठाये जाने लगे।

प्रारम्भ में जो कदम उठाये गये उनमें प्रमुख था जमींदारी व्यवस्था को समाप्त करना। अंग्रेजी राज्य के समय जमींदार का नया वर्ग विकसित हुआ था जो कि राज्य और किसान के बीच का एजेन्ट—मात्र था। व्यवस्था को समाप्त करने का साहसिक कदम आजाद के प्रथम दशक में उठाया गया। जमीन का वास्तविक अधिकारी जमीन को जोतने वाला हो, इस सिद्धात को स्वीकार किया गया। इसके साथ-साथ छोटे किसान, आदिवासी, हरिजन की जमीन सुरक्षित रहे, इसके लिए भी कानून बने। लगान एवं उसकी वसूली की व्यवस्था में सुधार भी किया गया। इन कदमों के साथ-साथ कृषि विकास की व्यापक योजना हाथ में ली गयी जिससे उत्पादन बढ़े और छोटे किसानों की

आय भी वढ़ सके । कृषि की नयी पद्धति की खोज, उन्नत किस्म के वीज की खोज एवं प्रचार, सिंचाई एवं खाद की सुविधा देना आदि ऐसे कदम हैं जिससे भूमि एवं कृषक सम्वन्धों को नई दिशा मिली ।

जनता और जमीन : आपसी सम्वन्ध :— ग्रामीण जीवन का आधार जमीन है इस वात को स्वीकार कर लेने के वाद दो वातों पर विचार करना उपयोगी होगा ।

1. भूमि व्यवस्था से सम्वन्धित समस्या—इसमें भूमि वितरण, जमीन की असमानता, कृषि विकास आदि समस्यायें आती हैं । इसके समाधान हेतु भूमि सुधार एवं कृषि विकास की अनेक योजनायें चली ।

2. ग्रामीण जीवन की सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति में भूमि को आधार मानकर आपसी सम्वन्व, मान-सम्मान तथा सामाजिक व्यवस्था को सही दिशा देने की समस्या—हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि भूमि की मात्रा का कम या ज्यादा होना महत्व रखता है और इसी आधार पर सामाजिक-आर्थिक सम्वन्धों का विकास होता है । अतः ग्रामीण जीवन को सही दिशा देने एवं सम्भव आर्थिक विकास के लिए ऊपर वताये गये दोनों प्रकार के प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है ।

परम्परागत व्यवस्था में ग्रामीण समाज में भूस्वामित्व, सामंतशाही, सामाजिक प्रतिष्ठा एवं आपसी सम्वन्ध एक दूसरे से जुड़ा हुआ है । काफी हद तक ग्राम नेतृत्व भी भूमि व्यवस्था के साथ जुड़ा हुआ है । जिस व्यक्ति, समुदाय या जाति के पास जमीन अधिक है, उसके पास आर्थिक सम्पन्नता, परम्परागत सामंती मानस, मान-सम्मान भी आ जाता है । इसलिए यदि भूमि व्यवस्था में योजनापूर्वक सुधार किया जाय तो समाज की अन्य पूंजीवादी एवं सामन्तवादी वुराइयां भी दूर हो सकती है ।* यहां स्वीकार करना चाहिए कि विरासत में जो व्यवस्था हमें मिली है उसमें हर स्तर पर व्यापक असमानता की पूरी गुंजाइश है । वैसे प्राचीन इतिहास को देखना चाहे तो असमानता की वात एक सीमा तक अस्वीकार की जा सकेगी । लेकिन आधुनिक भारत में मुस्लिम एवं अंग्रेजी राज्य काल ने जिस व्यवस्था को मजवूत वनाया है, उससे सामाजिक आर्थिक जीवन में असमानता को वल मिला है । इसका दोप किसी खास व्यक्ति

* देखें; श्री हर्षदेव मालवीय; लैण्ड रिफार्मस इन इण्डिया; 1955.

या समुदाय को दिए बिना यह स्वीकार करना चाहेंगे कि स्वतंत्र भारत को विरासत में ऐसी व्यवस्था मिली जिसमें परिवर्तन के लिए काफी कठोर परिश्रम की आवश्यकता है। हम जानते हैं कि भारतीय समाज का सबसे बड़ा भाग गरीबों का है, आर्थिक दृष्टि से कमजोर एवं सामाजिक दृष्टि से नीच समझे जाने वालों की संख्या अधिक है। विकास का अर्थ है इस प्रकार के लोगों का समग्र विकास करना। इस समुदाय के जीवन को समझना जरूरी है और भूमि सुधार के कार्यक्रम का लाभ इसी वर्ग को देना है। यह समुदाय गांवों में रहता है और सबका भूमि के साथ दर्दनाक सम्बन्ध है।

ग्रामीण आबादी :—देश की कुल आबादी का 80 प्रतिशत से कुछ अधिक भाग विकेन्द्रित गांवों में निवास करता है। गांवों में निवास करने वालों की जीविका का मुख्य आधार कृषि है। हां, कुछ लोग अन्य कार्यों में लगे हैं और कुछ लोग ऐसे भी है जो पास-पड़ोस के कस्बों एवं शहरों में जाकर रोजी कमाते और शाम को गांव वापस आ जाते हैं। गांवों में ऐसे लोग भी मिलेंगे जो रोजी-रोटी की तलाश में गांव से दूर शहरों में, दूर देहातों में चले जाते हैं। ऐसे लोग अपना पेट भरने के बाद जो कुछ बचता है, उसे गांव में रहने वाले बीवी-बच्चों के लिये भेज देते हैं। कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली में इस प्रकार के लोगों की बड़ी संख्या मिलेगी। कुछ लोग खास मौसम में, खास कर फसल के समय दूर देहात में जाकर रोजी-रोटी की समस्या हल करते हैं। गांव में निवास करने वाली जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग खेतिहर मजदूर के नाम से जाना जाता है। वैसे ऊपर जिनकी चर्चा की गयी है, वे भी मजदूर का सा जीवन ही बिताते हैं। खेती के काम में मजदूरी करने वाले परिवार को खेतिहर मजदूर कहा गया है। इनके पास जीविका के लिये स्वंय की जमीन या अन्य कोई साधन नहीं हैं। ये लोग गांव के किसानों के यहां खेत में मजदूरी करते हैं और उसी से उनके परिवार का आर्थिक जीवन पालते हैं। गांव में रहने वाली कुल जनसंख्या का करीब 33 प्रतिशत भाग खेतिहर मजदूर है। यह प्रतिशत सभी जगह एक समान नहीं है। जैसे बिहार के मुजफ्फरपुर क्षेत्र में गांव या गांव से बाहर जाकर मजदूरी, खासकर खेती में करने वाले और उन पर निर्भर रहने वालों का प्रतिशत 45 के आस-पास है।

ग्रामीण जीवन में आपसी सम्बन्ध :— गांव के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का जो स्वरूप परम्परा से रहा है उसमें खेतिहर मजदूर आम-तौर पर हरिजन एवं पिछड़ी जाति का है। वैसे गिनी-चुनी सवर्ण जातियों के कुछ लोग भी मजदूरी करते हैं। ग्राम समाज की एक खास व्यवस्था है जिसके कारण वहां के जीवन की समस्यायें अपने ढंग की हैं। भारत में ग्रामीण जीवन की विशेषताओं

को गिनाते समय उसे एक स्वायत्त समुदाय भी कहा जाता है। ग्राम स्तर पर एक समुदाय है। अनेक जाति, धर्म तथा आर्थिक दृष्टि से अमीर-गरीब सभी स्तर के लोगों के होते हुये भी गांव-ग्राम स्तर पर इकाई माना जाता रहा है।

हालांकि ठोस भौतिक स्तर पर हर परिवार अपने को अकेला महसूस करता है। फिर भी गांव का जीवन शहर के जीवन से भिन्न है। टूटता हुआ ग्रामीण जीवन भी अपने में कुछ विशेषताएं संजोये हुये है और इन विशेपताओं के कारण ही वहां की समस्याएं शहर से भिन्न हैं।

गांव का समुदाय इतना छोटा है कि जन्म से मृत्यु तक का साथ रहने पर खास प्रकार का सम्बन्ध विकसित हो जाता है। जब से जन्म लेता है तब से मृत्यु तक गांव के प्रत्येक व्यक्ति को जानता है। केवल जानता ही नहीं, रोज के जीवन में सबका सबसे सम्बन्ध आता है। कहा जाता है कि अब तो गांव "घरों का समूह" मात्र रह गया है। इस कथन में काफी सत्य भी है। हम ग्रामीण जीवन की गहराइयों में जायें तो उसमें काफी ऊब महसूस होती है। गांव में आपसी झगड़े, आर्थिक विषमता, जातिगत भेदभाव, तथा आपसी गुटबन्दी से गांव घरों का समूह मात्र रह गया है। फिर भी जहां जन्म से मृत्यु तक साथ रहता है वहां आपसी नजदीकी आ ही जाती है। दुराव चाहे जिस स्तर का हो, तीज-त्योहार, विवाह, मृत्यु आदि में सामूहिकता रहती है। गांव के किसी परिवार में शादी या मृत्यु है तो पूरा गांव उसमें आनंदित एवं दुःखी होता है, भले ही यह सब क्षणिक हो। कुछ गांवों में तो सामूहिकता का अच्छा नमूना देखा जा सकता है। गांव छोटा समुदाय है और कई परिवार तो एक ही मूल परिवार के बटवारे का परिणाम होता है। इस कारण एक परिवार की घटना कई परिवार को और कभी-कभी पूरे गांव को प्रभावित करती है।

सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से गांव कई स्तरों में बंटा हुआ है। यह बटवारा भारतीय समाज की स्थायी देन हो गयी है। सामाजिक दृष्टि से मोटे-तौर पर इसे सवर्ण, हरिजन एवं पिछड़ी जाति के रूप में विभाजित कर सकते हैं।

लेकिन सवर्ण या हरिजन कोई जाति नहीं है। सवर्ण में दर्जनों जातियां एवं उपजातियां आ जाती हैं और इसी प्रकार हरिजन, पिछड़ी जाति एवं आदिवासी में भी दर्जनों जातियों एवं उपजातियों में संकीर्णता की दीवार काफी मजबूत है। हर जाति जातिगत संकीर्णता के घेरे में घिरी है। सामाजिक शोषण एवं हिंसा की दृष्टि से हरिजन, आदिवासी एवं पिछड़ी जातियां सवर्णों द्वारा शोषित एवं हिंसा

का शिकार रही हैं। आर्थिक दृष्टि से गांव के जीवन में मोटे-तौर पर दो वर्ग माने जा सकते हैं। एक किसान और दूसरा मजदूर। परन्तु यह विभाजन अपरिवर्तनीय नहीं है। किसानों में भी छोटे, मध्यम एवं बड़े किसान हैं। खेती में काम करने वाले तथा अन्य क्षेत्रों में काम करने वाले मजदूर हैं। फिर ग्रामीण उद्योगों में अन्य लोग भी हैं, जैसे नाई, बढ़ई, लुहार, मोची आदि। हालांकि इनके धन्धे अब समाप्त-प्रायः है और ये लोग या तो खेतिहर मजदूर बन गये हैं या गांव से बाहर जाकर अन्य धन्धे में लग गये हैं। सामाजिक, आर्थिक पक्ष की समग्रता की दृष्टि से विचार करें तो यह साफ-तौर पर दिखता है कि सामाजिक एवं आर्थिक दोनों प्रकार की सम्पन्नता एक ही वर्ग (सवर्ण) को प्राप्त है। हरिजन, आदिवासी एवं पिछड़ी जातियां आम-तौर पर आर्थिक दृष्टि से भी गिरी स्थिति में हैं।

श्रमिकों का जीवन :—जैसा कि शुरू में कहा गया है- ग्रामीण आबादी का काफी बड़ा भाग खेतिहर मजदूर का है। गांव में इस समुदाय के बारे में छानबीन करें तो कुछ बातें आइने की तरह साफ दिखाई देती हैं। गांव में सवर्णों का प्रभुत्व होता है। हरिजन या यों कहें कि खेतिहर मजदूर का जीवन सवर्णों-खासकर सम्पन्न सवर्णों के हाथों में जकड़ा रहता है। बहुधा खेतिहार मजदूर गांव के सम्पन्न किसानों द्वारा बसाये गये होते हैं।

किसी जमाने में गांव के सम्पन्न किसानों ने मजदूरी कराने तथा कार्यों के लिये इन मजदूरों को बसाया था। सैकड़ों वर्ष पूर्व उन्हें बसने की जमीन दी थी। परन्तु यह स्थिति हर गांव में नहीं है। काफी गांवों में मजदूर वर्ग स्वयं अपनी जमीन पर कभी बसा था और पुस्त दर पुस्त से गांव में रहता एवं मजदूरी करता आ रहा है। आदिवासी तो सदा से जंगलों में रहते आये हैं। बिहार में मजदूरों को बसाने का रिवाज अधिक था। यही कारण है कि आज भी वहां बासगीत की जमीन का झगड़ा है। जो हो, गांव में बसने वाले मजदूर वर्ग का जीवन किसानों के जीवन के साथ-साथ चलता है। सवर्णो की सेवा (गुलामी) करना और उसके पुरस्कार के रूप में कुछ प्राप्त करना उनका स्वभाव बन गया था। हजूर-मजूर के इस भेद के कारण मजदूर हमेशा सामाजिक, आर्थिक शोषण का शिकार रहा है।

मजदूर एवं किसान के जीवन की गहराई में जाने से जो बातें मालूम होती है उस पर से कह सकते हैं कि आपसी सम्बन्धों का आर्थिक शोषण की प्रक्रिया चलती रही है, मजदूर रोज के जीवन में शोषण का शिकार होता है। यह शोषण उन क्षेत्रों में अधिक मुखर है जहां सवर्णो में रूढ़िगत दुराभिमान अधिक है। पिछले दिनों हरिजन आदिवासियों की हत्या एवं जिन्दा जलने की अनेक घटनायें

सामने आयीं। परन्तु हत्या तो ग्रामीण शोषण एवं हिंसा का अंतिम रूप है। रोज के जीवन में होने वाली हिंसा और शोषण की खबर तो किसी को नहीं होती है। इसके तो वे अभ्यासी हो गये हैं। मालिक, खासकर बड़ा किसान, मजदूरों को गुलाम समझने का अभ्यासी हो गया है। बातचीत में गाली एवं अभद्र व्यवहार तो मालिक-मजदूर का आम व्यवहार माना जाता है। जब चाहे काम पर बुला लेना, कम एवं घटिया बाट से मजदूरी देना, मालिक अपना अधिकार समझता है। मालिक के किसी भी दुर्व्यवहार का जवाब देना मालिक को सहन नहीं। यदि कोई मजदूर अभद्र व्यवहार या अन्याय के विरोध में उत्तर देता है तो यह किसान को सहन नहीं। मजदूर का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन बड़े किसानों की इच्छानुसार चलता है। व्यवहारिक जीवन में खेतिहर मजदूरों का आर्थिक जीवन इतना कठिन है कि उनको हर बढ़ते कदम उठाने में आर्थिक मजबूरी सबसे बड़ी बाधा है। इनके जीवन की जो वास्तविक स्थिति है, उसे इस रूप में गिनाया जा सकता है। इनके पास—

1. जीविका के लिए स्वयं का कोई साधन नहीं है।
2. अनिवार्य जरूरतों के लिए (भोजन, वस्त्र आदि) किसानों पर निर्भर रहना पड़ता है।
3. मकान के लिए किसान एवं महाजन पर निर्भर रहना पड़ता है।
4. "रोज कमाने एवं रोज खाने" की स्थिति रहती है। यह जरूरी नहीं कि रोज भर पेट भोजन मिले ही, फिर परिवार के हर सदस्य का रोज पेट भरे, यह तो बिल्कुल आवश्यक नहीं है।
5. कर्ज एवं उधार के लिए किसान एवं महाजन पर निर्भर है और प्रायः प्रत्येक मजदूर कर्जदार होता है।
6. परिस्थिति चाहे जैसी भी एवं जितनी भी अमानुषिक हो, जिन्दा रहने के लिए मजदूरी करना अनिवार्य है।
7. काम न मिलने पर भी गांव के किसान एवं महाजन की दया पर ही रहना पड़ता है।
8. गांव के प्रमुख लोगों से व किसानों से विरोध करके गांव में रहना सम्भव नहीं है।
9. किसानों को मजदूरों की जागृति सहन नहीं है।

खेतिहर मजदूरों की आर्थिक स्थिति, उनके रहन-सहन की सही जानकारी के लिए कई अध्ययन किए गये हैं।

आर्थिक मजबूरियां :– भारत सरकार ने 1950-51 और 1956-57 में उनके रहन-सहन एवं कार्य की परिस्थितियों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से व्यापक सर्वेक्षण किया था। इस सर्वेक्षण पर से जो तथ्य सामने आये, वे आंखें खोल देने के लिए पर्याप्त हैं। यहां ग्रामीण जीवन की कुछ मूल बातें स्वीकार करना जरूरी है। 1– पिछले दो दशकों में खेतिहर मजदूर की दैनिक मजदूरी प्रायः नहीं बढ़ी है। हां, कुछ जागरूक क्षेत्रों में बढ़ी भी हैं, परन्तु दूर के गांवों में सदियों से मजदूरी की दर स्थिर है। बहुत बड़े क्षेत्र में मजदूरी वस्तु के रूप में दी जाती है। इस स्थिति में वस्तु की मात्रा तो नहीं बढ़ी, पर वस्तु की कीमत जरूर बढ़ गई है। 2–मजदूर परिवार का प्रत्येक सदस्य काम नहीं करता है। प्रत्येक सदस्य को काम मिलना सम्भव भी नहीं है। फिर महिलायें, बच्चे एवं वृद्ध की जो स्थिति होती है उसमें वे हमेशा काम करने की स्थिति में नहीं रहते हैं 3– खेतिहर मजदूर को साल भर काम नहीं मिलता है। सामान्यतः साल भर में 200 दिन के आस-पास उन्हें काम मिलता है। शेष दिन बेरोजगार रहना पड़ता है या कुछ दिन आधे समय तक काम मिलता है।

ऊपर जिस सर्वेक्षण की बात कही, उसके अनुसार आकस्मिक रूप से कृषि का काम करने वाले एक व्यक्ति को औसतन 1950-51 में 200 दिनों तक काम मिलने की अपेक्षा 1956-57 में लगभग 197 दिन काम मिला। स्वयं रोजगार के 1950-51 में 75 दिनों से घटकर 1956-57 में लगभग 40 दिनों तक रह जाने के कारण स्वयं रोजगारी को बहुत धक्का लगा। सन् 1950-51 और 1956-57 में बेरोजगारी क्रमशः 90 और 128 दिनों तक रही। अखिल भारत स्तर पर आकस्मिक कृषि मजदूर की प्रतिदिन की औसत मजदूरी दर 1950-51 में 109 पैसे और 1956-57 में 95 पैसे थी। आकस्मिक स्त्री कृषि श्रमिक की प्रतिदिन की औसत मजदूरी दर 1950-51 और 1956-57 में क्रमशः सिर्फ 68 पैसे और 59 पैसे थी। सन् 1950-51 में कृषि से सम्बन्धित परिवारों की औसत आय का लगभग 76 पैसे पारिश्रमिक रोजगार से निकलता था जबकि 1956-57 में उनकी इस औसत आय का 81 प्रतिशत कृषिगत मजदूरियों से निकलता था।*

ऊपर जो आंकड़े दिये गये हैं वह सभी जगह समान रूप से नहीं लागू है। कई स्थानों में अधिक मजदूरी मिलती है। लेकिन साधारणतया खेतिहर मजदूरों की आर्थिक स्थिति काफी दयनीय है। अभी हाल में उ. प्र. के गाजीपुर जिले के एक क्षेत्र में मजदूरी वृद्धि को लेकर मजदूरों ने हड़ताल की थी। वहां की

* श्री जे० बी० एस० चौहान, खादी ग्रामोद्योग, जून 1972 खादी ग्रामोद्योग कमीशन, बम्बई।

मजदूरी दर की जानकारी देते हुए एक साप्ताहिक पत्र ने लिखा—इस क्षेत्र में सामान्यतया पूरे जिले में मजदूरी के रूप में मजदूरों को एक वीघा जमीन (घटिया किस्म की) दी जाती है जिसका उत्पादन मजदूर स्वयं लेता है। यह जमीन उसे एक मौसम की खेती के लिए दी जाती है। इस एक वीघा जमीन के अतिरिक्त एक पाव सत्तू एवं एक लोटा गुड़ का रस दिया जाता है। धान की रोपइ जैसे कार्यों के लिये 25 पैसे एवं आधा सेर अनाज मजदूरी में प्रतिदिन दिया जाता है। उक्त मजदूरी प्राप्त कर मजदूर सुवह से शाम तक काम करता है। तात्पर्य यह है कि गांव में खेतिहर मजदूर का आर्थिक जीवन जिस स्तर का है, उसमें जिन्दा रहना भी असम्भव हो रहा है।

भूमि सुधार की परिस्थिति :– जैसा कि पहले कहा जा चुका है—ग्रामीण जीवन की उपरोक्त परिस्थिति में परिवर्तन के लिए आवश्यक है कि उसके मूलभूत कारणों को समाप्त किया जाय। भूमि ग्रामीण जीवन-चक्र की धुरि है। सम्पूर्ण जीवन इसी के इर्द-गिर्द घूमता है। यदि भूमि व्यवस्था में पर्याप्त सुधार कर दिया जाता है तो सम्पूर्ण ढांचे में परिवर्तन देखा जा सकता है। हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि आज तक भूमि व्यवस्था की जो स्थिति है उसमें वहुत करने की आवश्यकता है। भूमि सुधार का जो प्रयास प्रारम्भ किया गया है उसके शुभ परिणाम की आशा करने में किसी प्रकार का संदेह नहीं है। फिर भी आवश्यकता इस वात की है कि भूमि सुधार को इस प्रकार की दिशा दी जानी चाहिये कि जिससे आपसी सम्बन्धों को भी सही दिशा मिले। भूमि वितरण की असमानता कम करने एवं अतिरिक्त भूमि वितरण के साथ सामाजिक सम्बन्धों में निकटता लाने का प्रयास भी करना चाहिये। भौतिक असमानता कम करना कार्यक्रम का प्रमुख अंग है जिसकी पूर्ति सरकार एवं पंचायत दोनों के सहयोग से की जा सकती है।

देश में भूमि वितरण की जो स्थिति है उससे स्पष्ट है कि खास वर्ग के पास भूमि केन्द्रित है। यह विकेन्द्रीकरण सभी राज्यों में एक समान नहीं है। पूरे देश में (1960-61 के आंकड़े) गांव में वसने वाले कुल परिवारों में से करीव 36 प्रतिशत भाग के पास या तो विलकुल जमीन नहीं है या आधा एकड़ से कम है। यदि जोत की सीमा वढ़ायें तो 2.5 एकड़ तक के परिवारों की संख्या पूरे देश में 57.59 प्रतिशत हो जाती है। ये लोग कुल जोत का मात्र 7 प्रतिशत भाग जोतते हैं। इसके विपरीत मात्र 2.09 प्रतिशत परिवार देश की कुल जोत का करीव 23 प्रतिशत भाग पर अधिकार रखते हैं।*

* देखें–एम.वी. डांडेकर एवं रथ, पावर्टी इन इन्डिया; पेज 68 इन्डियन स्कूल ऑफ पोलिटिकल इकोनोमी, पूना 1971.

ग्रौसत की उपरोक्त स्थिति सभी राज्यों की परिस्थिति का जायका प्रस्तुत नहीं करता है। विभिन्न राज्यों में स्थिति काफी भिन्न है। उदाहरण के लिए केरल में करीब 54 प्रतिशत ग्रामीण परिवार के पास या तो बिलकुल जमीन नहीं है या ग्राधा एकड़ से भी कम है, 2.5 एकड़ तक जोत की सीमा में करीब 85 प्रतिशत परिवार शामिल हो जाता है। इसके विपरीत मात्र 0.72 प्रतिशत परिवारों के पास 15 एकड़ से ग्रधिक जमीन है। इस प्रकार कई राज्यों में इससे मिलती-जुलती स्थिति है तो कई राज्यों में थोड़ी भिन्न स्थिति है। सरकार की ग्रोर से सीलिंग के माध्यम से जमीन निकालने एवं भूमिहीनों में वितरित करने का प्रयास प्रारम्भ किया है। ग्रामतौर पर दो प्रकार की जमीन वितरण के लिए प्राप्त होती है। एक, जिन किसानों के पास कानून द्वारा निर्धारित सीलिंग से ग्रतिरिक्त भूमि है, उनकी जमीन प्राप्त कर वितरित की जाती है। दो, सरकारी जमीन (जिसमें बंजर, जंगल या ग्रन्य प्रकार की जमीन) को भूमिहीनों में वितरित की जाय। विभिन्न राज्यों में वहां की परिस्थिति, भूमि किस्म ग्रादि को देखते हुए सीलिंग की सीमा भिन्न-भिन्न है। सीलिंग के बाद जो जमीन बचती है उसे वितरित करने का प्रयास किया जाता रहा है। हाल के वर्षों में यह कार्य व्यापक रूप से प्रारम्भ किया गया है। विभिन्न राज्यों में न्यूनतम भूमि प्राप्त करने की नीति एवं मात्रा, सीलिंग की स्थिति, प्राप्त भूमि ग्रादि बातों को संलग्न सारणी में देखा जा सकता है। इस सारणी में सरकार द्वारा निश्चित न्यूनतम जोत प्रदान करने की जो नीति ग्रपनायी गयी है, यदि इसकी पूर्ति होती है तो एक बड़ी सफलता कही जायगी। हालांकि यह न्यूनतम मात्रा वास्तव में न्यून है। केरल, तमिलनाडू, ग्रसम, पं. बंगाल, जम्मू-काशमीर, संघ शासित क्षेत्र में तो यह न्यूनतम पूर्ति ग्राधा एकड़ है। बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा में न्यूनतम पूर्ति एक एकड़ माना गया है। शेष राज्यों में 2.5 एकड़ न्यूनतम माना है। राजस्थान में पर्याप्त भूमि होने के कारण वहां यह सीमा 5 एकड़ है। न्यूनतम की पूर्ति से समस्यायें तभी कम हो सकती है जब कि उत्तम खेती की जाय। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ यह न्यूनतम ग्रौर ग्रधिक न्यून होता जायगा। यही कारण है कि कुछ विद्वानों का मत है कि जमीन का पुर्नवितरण ग्रामीण जीवन की समस्या नहीं सुलझाती है।* इस मत में ग्रांशिक सत्यता को स्वीकार करते हुए भी भूमि सुधार के कार्यक्रमों का स्वागत करना होगा, क्योंकि किसी भी हालत में जमीन का कुछ हाथों में केन्द्रित करने की नीति को नहीं स्वीकार किया जा सकता है। यह स्वागत योग्य बात है कि भूमि सुधार के जरिये प्रत्येक ग्रामीण परिवार को कुछ न कुछ जमीन देने का

* देखें, दांटेकर एवं रथ, उपर्युक्त,

प्रयास किया जा रहा है ताकि उसे जीवन का एक स्थायी आधार मिले। इसके साथ यदि उत्तम तकनीक एवं कृषि की सुविधायें दी जायें तो कम जमीन भी गांव के बड़े भाग को जीविका का आधार दे सकती है। कृषि की नयी पद्धति एवं अन्य सुविधाओं ने कम जमीन में अधिक उत्पादन कर छोटे किसानों की समृद्धि का नया मार्ग प्रदस्त किया है।*

पंचायत की भूमिका :— भूमि सुधार का सीधा सम्बन्ध ग्राम से है। इस दिशा में किसी प्रयास का अर्थ है–सीधे ग्राम समाज की व्यवस्था में परिवर्तन करना। चाहे सरकारी जमीन बटे या सीलिंग में प्राप्त भूमि का बटवारा हो, दोनों स्थिति में गांव की आर्थिक व्यवस्था एवं सामाजिक सम्बन्धों में फर्क आता है। जब भूमि-हीन को भूमि मिलती है और वह मजदूर से किसान की श्रेणी में आता है तो उसकी आर्थिक परिस्थिति में परिवर्तन आ जाता है। इसका सीधा प्रभाव उसकी सामाजिक स्थिति पर पड़ता है और बाद में उसकी राजनैतिक स्थिति में भी परिवर्तन आ जाता है।

---

* उपरोक्त, पेज 67.

सीलिंग में प्राप्त भूमि और इसका वितरण

राज्य	प्रति परिवार औसत भूमि (एकड़)	प्रस्तावित न्यूनतम पूर्ति (एकड़)	राज्य में न्यूनतम से कम जमीन वाले परिवारों का प्रतिशत	न्यूनतम की पूर्ति के लिए भूमि की आवश्यकता (मिलियन एकड़ में)	प्रस्तावित सीलिंग एकड़	सीलिंग से अधिक जमीन वाले परिवार का प्रतिशत	अतिरिक्त भूमि जो कि प्राप्त हो सकती है (मिलियन एकड़ में)
1	2	3	4	5	6	7	8
केरल	1.32	0.5	54.05	0.538	7.5	2.97	0.507
तमिलनाडू	1.94	0.5	51.98	1.676	10.0	3.55	1.498
असम	2.29	0.05	39.58	0.379	7.5	5.39	0.347
पं. बंगाल	2.55	0.5	41.17	0.927	10.0	4.50	1.031
जम्मू-कश्मीर	3.10	0.5	16.72	0.045	15.0	1.16	0.043
संघीय क्षेत्र	3.21	0.5	33.33	0.064	15.0	1.69	0.064
बिहार	2.88	1.0	46.31	2.975	12.5	3.66	2.936
उड़ीसा	3.31	1.0	42.80	1.438	15.0	5.08	1.437
उत्तर प्रदेश	3.51	1.0	35.39	3.715	15.0	3.32	3.884
पंजाब, हरियाणा	5.45	1.0	49.32	1.149	25.0	3.97	1.239
आन्ध्र प्रदेश	4.24	2.5	65.95	8.982	15.0	7.23	7.738
मैसूर	6.80	2.5	43.99	3.280	25.0	6.17	3.326
गुजरात	7.39	2.5	47.09	3.020	25.0	7.55	3.443
मध्य प्रदेश	7.62	2.5	39.20	4.135	30.0	3.78	4.292
महाराष्ट्र	7.72	2.5	48.60	5.357	30.0	5.83	5.662
राजस्थान	12.36	5.0	43.47	3.905	50.0	3.55	4.394

* उद्धृत, एम. वी. डांडेकर एवं रथ, पावर्टी इन इण्डिया, पेज 81.

इस प्रकार ग्राम समाज में मालिक-मजदूर, ऊंच-नीच का जो सम्बन्ध अब तक चला आ रहा है या उसमें परिवर्तन आता है। उपेक्षित समाज को जीवन का आधार एवं प्रतिष्ठा मिलती है। यह कार्य इस कारण भी आवश्यक है क्योंकि लोकतांत्रिक आर्थिक विकास में उन्हें प्राथमिकता देनी आवश्यक है जो सदियों से गरीब एवं उपेक्षित हैं। राजनैतिक क्षेत्र में उनका स्थान स्वीकार करने के लिए आवश्यक है कि उनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति बदले, इस बदलाव में पंचायतीराज की प्रमुख भूमिका होगी। गांव की बदलती परिस्थिति में पंचायतीराज सब के हितों की रक्षा करने के साथ-साथ सम्बन्धों में कटुता कम करने में बहुत मददगार होगा। भूमि सुधार के काम का सीधा सम्बन्ध गांव से होने के कारण पंचायत की भूमिका प्रमुख होगी।

पंचायतीराज से ग्राम समाज के सभी वर्गों के विकास में सहयोग की अपेक्षा रखना स्वाभाविक है। इस अपेक्षा की पूर्ति तभी सम्भव है जबकि इसमें समाज के कमजोर वर्ग को साथ लिया जाय। गांव में रहने वाला भूमिहीन मजदूर, महिलायें तथा अन्य गिरी स्थिति में रहने वाले लोगों का पूरा सहयोग पंचायतीराज को मिलना चाहिए। यह तभी सम्भव है कि उनके विकास का काम पंचायत द्वारा किया जाय और इस काम में उन्हें साथ लिया जाय। आज की बदलती परिस्थिति में यह आवश्यक है कि ग्राम स्तर के कार्यों को प्राथमिकता दी जाय और इसकी पूर्ति का आधार पंचायत को माना जाय।

आठवां अध्याय

बदलती परिस्थिति और पंचायतीराज

योजना की पूर्ति का नया आयाम:—योजना की पूर्ति किस सीमा तक होती है, इसकी सही जानकारी के लिये ग्रामों में होने वाली प्रगति को देखना चाहिए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्राम समाज की प्रगति के लिए अनेक योजनायें बनीं। गांव में सभी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के लोग हैं, जिनका विकास करना है। विकास की सही दिशा के लिए आवश्यक है कि गांव में रहने वाले लोगों का पूरा-पूरा सहयोग मिले। ग्रामीण गरीबी से मुक्ति के लिए इस बात की अनुकूलता की आवश्यकता है कि सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति के लोगों द्वारा गरीबों को संरक्षण मिले। पिछली योजनाओं में गांव के कमजोर वर्ग के विकास के लिए जो भी योजना बनी, उसका पूरा लाभ उन्हें नहीं मिला। इस आम धारणा को स्वीकार किया जाना चाहिए और इस स्थिति को समाप्त करने के लिए योजनाओं की पूर्ति की एजेन्सी को अधिक मजबूत करने की आवश्यकता है। पंचायत विकास योजनाओं की पूर्ति की मजबूत एजेन्सी हो सकती है। यदि पंचायतें अपना दायित्व समझें और उन्हें पूरे अधिकार दिये जायें तो इस बात की आशा करनी चाहिए कि लोगों को योजनाओं का पूरा लाभ मिलेगा। हम जिस वर्ग को योजना का लाभ देना चाहते हैं, उन्हें लाभ देने में पंचायत की भूमिका सर्व प्रमुख होगी। हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि कतिपय कारणों से पंचायतें योजना की पूर्ति में वैसी भूमिका नहीं निभा सकी, जैसी अपेक्षा थी। वैसे योजना का पूरा लाभ न मिलने के लिए पंचायतों को एकमात्र जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है।

समाज के सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग को योजना का पूरा लाभ न मिलने के कारणों की तलाश में अनेक कारण सामने आते हैं। उनमें से कुछ कारणों को इस रूप में गिनाया जा सकता है :—

1. कानूनगत खामियां :—हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि कानून में कई ऐसी कमजोरियां रह गयी हैं जिनके कारण उनको पूरा लाभ नहीं मिल पाया, जिनके लिए कानून बना।

2. स्वार्थ:—परम्परागत समाज में एक वर्ग ऐसा है जो कि अपने स्वार्थ-वश कमजोर वर्ग को विकसित नहीं देखना चाहता है।

3. कार्य की शिथिलता :—हमें राजनीतिक स्वतंत्रता मिली और राजनीतिक स्वतंत्रता का जो रूप हमने स्वीकार किया है उसमें कई प्रकार के नागरिक अधिकार मिले। परन्तु अधिकार के साथ कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व की भावना की कमी के कारण कार्य में गति नहीं आ पाती है।

4. ग्रामीण समाज में आपसी राग-द्वेष, ऊंच-नीच का भेद-भाव, सामाजिक भेद-भाव तथा पुरानी रूढ़ियां ऐसी समस्या है जिसे योजनाओं की पूर्ति के साथ जोड़ा जाना चाहिए। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि समाज कल्याण की योजनाओं के माध्यम से इन समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया गया है। आवश्यकता इस बात की है कि नये संदर्भ में योजनाओं की पूर्ति पर पुर्नविचार किया जाय।

मुख्य समस्या समाज के कमजोर वर्ग को आर्थिक विकास की योजनाओं में साथ लेना तथा उन्हें लाभ पहुंचाने की है। परम्परागत व्यवस्था के अन्तर्गत कमजोर वर्ग को विकास का पूरा अवसर नहीं मिल पाता है। इसके कुछ मुख्य कारणों को ऊपर गिनाया गया है। इन कारणों को हल करने में पंचायतीराज की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। समाज के कमजोर वर्ग के हित एवं विकास की योजनाओं के बावजूद उन्हें अनेक प्रकार के शोषण एवं हिंसा का सामना करना पड़ रहा है। यह स्थिति सभी क्षेत्रों में समान रूप से नहीं होते हुए भी यह स्पष्ट-तौर पर देखने में आता है कि आज भी कमजोर वर्ग को दबाया जाता है और वह हिंसा का शिकार होता है। बिहार में हुई घटनाओं का उल्लेख नमूने के रूप में किया जा सकता है। गांव का कमजोर वर्ग प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष, दोनों प्रकार के शोषण एवं हिंसा का शिकार होता है।* ग्राम समाज की वर्तमान परिस्थिति में कमजोर वर्ग के विकास के लिए आवश्यक है कि योजनाओं के साथ जन-सहयोग का वातावरण बनाया जाए। जिन योजनाओं को गांव में पहुँचाना चाहते हैं तथा उससे कमजोर वर्ग को लाभ देना चाहते हैं, उसकी पूर्ति

* देखें, डा० अवध प्रसाद, ग्रामीण हिंसा, सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी, 1974.

में ग्राम-जन का सहयोग आवश्यक है। यह कहा जा सकता है कि पिछले वर्षों में पंचायतीराज में इसका प्रयोग किया गया है और अब स्थिति यह है कि पंचायतीराज की संस्थाओं में शिथिलता आ गयी है। यहां हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि पंचायतीराज में जनसहयोग का वह स्वरूप सामने नहीं आ सका, जिसकी अपेक्षा की गयी थी। इसे दृष्टिगत रखते हुए पंचायतीराज के भावी स्वरूप पर पुनः विचार किया जाना चाहिये।

योजना के निर्माण एवं उसकी पूर्ति में समाज के सभी वर्ग के और विशेष रूप से कमजोर वर्ग के विकास की अपेक्षा रखा जाना स्वाभाविक है। योजना के उद्देश्य एवं उसकी पूर्ति में भी यही मंशा है। लेकिन आज भी यह महसूस किया जा रहा है कि गांव का उतना विकास नहीं हो पाया है जितना कि होना चाहिये था। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर योजना एवं उसकी पूर्ति पर नयी दृष्टि से विचार प्रारम्भ हुआ है। अब इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि योजना ग्रामोन्मुख होने के साथ-साथ भारतीय परिस्थिति के अनुकूल हो। योजना आयोग तथा भारतीय अर्थशास्त्री यह विचार व्यक्त करने लगे हैं कि योजना का निर्माण केन्द्रित रूप में न होकर क्षेत्रीय परिस्थिति को ध्यान में रखकर किया जाय। योजना आयोग के सदस्य प्रो. राजकृष्ण ने तो प्रखण्ड स्तर पर योजना निर्माण की बात कही है। तात्पर्य यह है कि योजना निर्माण एवं उसकी पूर्ति क्षेत्रीय परिस्थिति, कच्चा माल, श्रमशक्ति आदि को ध्यान में रखकर किया जाय। इसी प्रकार औद्योगिक विकास की दृष्टि से भी विकेन्द्रित औद्योगीकरण पर अधिक जोर दिया जा रहा है।

चिंतन की बदलती दिशा में पंचायतीराज की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। जब आर्थिक विकास का केन्द्र बिन्दु ग्राम या प्रखण्ड होगा तो हमें ऐसी ऐजेंसी विकसित करनी होगी जो कि इस कार्य को पूरा कर सके। यह कार्य मात्र सरकारी अधिकारियों द्वारा नहीं पूरा किया जा सकता है। स्थानीय स्तर पर स्वयंसेवी एजेंसी विकसित करना आवश्यक है और यह एजेंसी पंचायतीराज की संस्थायें हो सकती हैं। एक प्रश्न विकास की समग्रता का भी है। मात्र आर्थिक विकास से समाज का संतुलित विकास संभव नहीं। आर्थिक विकास एक पक्ष है और इसे एकांकी रूप में लागू करने पर असंतुलन बढ़ेगा। इस असंतुलन को कम करने में पंचायतों की प्रमुख भूमिका हो सकती है। यह देखने में आता है कि आपसी राग-द्वेष, स्वार्थ, सामाजिक संकीर्णता आदि के कारण विकास का लाभ उन तक नहीं पहुंच पाता है, जिनके लिए विकास की योजनायें होती हैं। यदि स्थानीय स्तर पर योजना की पूर्ति की मजबूत एजेंसी हो तो यह कठिनाई

दूर हो सकती है। गांव या क्षेत्र की पंचायतीराज संस्थाओं को योजनाओं की पूरी जानकारी हो तथा वह उसे लागू करने में सक्षम हो तो समग्र विकास का काम आसान हो सकता है। जन-सहयोग से विकास को सरल बनाया जा सकता है और यह कार्य पंचायतीराज द्वारा ही किया जा सकता है।

गांव को प्रभावित करने वाले विकास के अनेक ऐसे सामाजिक एवं आर्थिक कार्यक्रम बनाये एवं लागू किये जाते रहे हैं जिनमें पंचायतीराज संस्थाओं की प्रमुख भूमिका हो सकती है। उन कार्यक्रमों में से कई कार्यक्रम ऐसे हैं जो जीवन की आवश्यकताओं को गहराई से प्रभावित करती है और आज भी उनकी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी पहले थी। इनमें मुख्य हैं—भूमि की असमानता कम करना, कमजोर वर्ग की भूमि की रक्षा, कर्ज मुक्ति, न्यूनतम मजदूरी दिलाना आदि।

भूमि सुधार सम्बन्धी कानून को लागू करने में पंचायतें प्रमुख भूमिका निभा सकती हैं। सीलिंग के कानून सभी राज्यों में बने हैं और अब इन्हें अधिक मजबूत किया जा रहा है। लोग सीलिंग से बचने के लिए अनेक प्रकार के गलत प्रयास करते हैं। पंचायत यदि इस कार्य में रुचि ले तो भूमि सुधार सम्बन्धी कार्य काफी सहज हो सकता है। अब समय आ गया है जबकि पंचायत को समाज के कमजोर वर्ग के हितों की रक्षा का माध्यम बनाया जाय। इसे इस रूप में संगठित किया जाय जिसमें कमजोर वर्ग की बात सुनी जाय और गिने-चुने प्रभावशाली लोगों का पंचायत पर एकाधिकार समाप्त हो।

आजादी के इतने दिनों बाद भी हम रहने के लिए मकान नहीं दे पाये हैं। स्थिति इतनी विकट है कि गांव में रहने वाला कमजोर वर्ग अपने को असहाय पाता है और अपनी आवासीय जमीन की भी सुरक्षा नहीं कर पाता है। बिहार में बासगीत की जमीन की सुरक्षा की विकट समस्या है। किसी भी कीमत पर इस आवासीय भूमि की सुरक्षा की जानी चाहिये। गांव के कुछ लोग इस प्रकार की आवासीय भूमि को हड़पने का प्रयास करते हैं। अतः जिनके पास आवासीय भूमि है, उनकी रक्षा की जानी चाहिये और जिनके पास नहीं है, उन्हें दी जानी चाहिए। ये दोनों कार्य पंचायतों द्वारा किया जा सकता है। यदि पंचायतें इसे करती हैं तो काम आसान हो जाता है और यदि पंचायतें इससे अलग रहती हैं तो इस कार्य में अनेक उलझनें आ सकती हैं।

गांवों में जबरन और अधिक समय तक कार्य कराने की गलत एवं अमानुषिक परम्परा है। गांव का मजदूर इसका भुक्तभोगी है। कई रूपों में यह

परम्परा देखी जा सकती है। गांव के कुछ लोग अपने मजदूर एवं कमजोर वर्ग से जबरन कार्य कराते हैं। इस प्रकार के लोग अधिक समय तक भी काम कराते हैं। सामान्यतः स्वभाव से क्रूर या अपने को गांव का मुखिया कहने वाले लोग ऐसा करते हैं। गांव में अनेक ऐसी परम्परायें बन जाती हैं जिसमें मजदूर वर्ग को उस परम्परा को निभाने के लिए मजबूरी में काम करना पड़ता है, जैसे—(1) गांव का मजदूर सुबह से शाम तक काम करता है। उसके सामने समय की कोई सीमा नहीं है और यह स्थिति पूरे गांव की होती है। (2) गांव में वार्षिक समझौते भी होते हैं जिसमें उसे जबरन काम करना पड़ता है।(3) इसी प्रकार मजदूरी के बारे में भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न नियम होते हैं जिसमें उनका शोषण होता है। (4) लेने-देने के कारण मजदूर बन्धन में आ जाता है।* इस प्रकार की कई समस्यायें हैं जिसे मात्र कानून से हल नहीं किया जा सकता है और न ही उसे दबाव या डंडे के बल पर लागू किया जा सकता है। गांव-गांव में सरकारी कर्मचारी इन कार्यों को नहीं कर सकता है। इसके लिए तो ग्राम स्तर पर "कैडर" निर्माण करना होगा। गांव के लोगों का विचार एवं मानस बदलना होगा जिससे इस प्रकार की परम्परा समाप्त हो और जो व्यक्ति इस प्रकार के गलत कार्य करते हैं, उन पर निगाह रखी जाय। यह कार्य पंचायत के जरिये किया जा सकता है। कानून इस कार्य में मददगार होगा। गांव में कुछ लोग ऐसे निकलें जो इस कार्य में समय दें और इस परम्परा को समाप्त करें। पंचायत युवकों को इस काम में साथ ले सकता है। गांव-गांव में इस प्रकार का कैडर तैयार हो, इसके लिए प्रयास किया जाना चाहिए। इस विषय से सम्बन्धित साहित्य एवं अन्य प्रकाशित सामग्री का व्यापक प्रचार किया जाना चाहिये जिससे वातावरण अनुकूल बने। ग्रामीण कर्ज विकट समस्या है। गांव के कमजोर वर्ग कर्ज की जिस परिस्थिति में रहता है इससे मुक्ति का प्रयास उन्हें नया जीवन प्रदान करेगा। कर्ज मुक्ति में महाजन व किसान के कर्ज से मुक्ति मुख्य समस्या है। सरकारी कर्ज उतना कष्टकारक नहीं होता है जितना महाजनों एवं बड़े किसानों की कर्जदारी। गांवों में कर्जदारी की जो गम्भीर स्थिति है उसमें निपटने के लिए आवश्यक है कि गांव के लोगों का सक्रिय सहयोग हो। गांव में कई प्रकार के कर्ज लेने पड़ते हैं, जैसे रोज खाने के लिए फुटकर नकद कर्ज, अनाज के रूप में कर्ज, सामाजिक व्यवहार (विवाह, मृत्यु आदि) के लिए कर्ज, एवं लम्बी अवधि के लिए लिया गया कर्ज। समाज का बड़ा भाग दैनिक कर्ज से पीड़ित रहता है। इस कर्ज पर उसे ज्यादा ब्याज देना पड़ता है। इस विषय पर किये गये अध्ययनों से साफ है कि कर्जदारी से

* देखें दिनमान, जुलाई, अगस्त 1975.

मुक्ति तभी संभव है जबकि कर्ज लेने वाले की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आये। तत्कालिक कदम के रूप में पिछले कर्ज से मुक्ति देना और व्याज की दर कम करना एक कारगर उपाय हो सकता है। फिर भी गांव में कर्ज व्यवहार की जो परिस्थिति है उसमें ग्रामस्तर पर सहयोग आवश्यक है। पंचायत इस काम को कर सकती है। पंचायत जितनी सक्षम होगी, उतनी सफलता मिलेगी। कर्ज की मुक्ति की दृष्टि से फिलहाल पंचायतें इन कार्यों को कर सकती हैं। (1) महाजय, वड़े किसान तथा अन्य व्यक्तिगत स्रोतों से लिए गये कर्ज का विवरण प्राप्त किया जाय। (2) व्याज की स्थिति की जांच की जाय। (3) अधिक व्याज एवं गलत हिसाव की जांच की जाय। (4) सरकारी कानून के अनुसार कर्ज मुक्ति का प्रयास किया जाय। (5) ग्रामस्तर पर कर्ज की समस्या को सुलझाने की योजना वने।

न्यूनतम मजदूरी सवको मिले यह समस्या दूर के गांवों में अधिक विकट है। शहर एवं विकसित क्षेत्र में यह समस्या भले ही मुखर न हो परन्तु देश के काफी वड़े क्षेत्र में आज भी काम करने वाले को पूरी मजदूरी नहीं मिलती है। खेत मजदूर को न्यूनतम मजदूरी मिले, इसकी जिम्मेदारी पंचायत की होनी चाहिए। इस दिशा में पंचायत, ग्राम या क्षेत्र स्तर पर समस्या का समाधान कर सकती है। न्यूनतम मजदूरी नकद एवं वस्तु, दोनों रूप में पूरी मिले, इसका प्रयास किया जाना चाहिये।

जो भी कार्यक्रम ग्राम से सम्वन्वित है उनकी पूर्ति में योगदान की दृष्टि से पंचायतों को अधिक गतिशील वनाने की आवश्यकता है। ऐसी परिस्थिति में जवकि विकास कार्यक्रम तो गति प्रदान करने के लिए सरकार तत्पर है, पंचायती-राज संस्थाओं का दायित्व वढ़ जाता है। यदि इनका पूरा सहयोग मिला तो योजनाओं की पूर्ति सहज हो सकेगी। इसके लिए ग्रामपंचायत एवं प्रखण्ड स्तर की पंचायतीराज संस्थाओं को मजवूत वनाने के साथ-साथ अनुकूल वातारण का निर्माण करना आवश्यक है। इसके लिए पंचायतीराज के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्षों का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। अव तक पदाधिकारियों एवं मुख्य जन-प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण की कुछ सीमा तक व्यवस्था की जाती रही है। लेकिन सामान्य-जन इस प्रकार के प्रशिक्षण से अछूता रहा। पंचायतीराज की शिथिलता का एक कारण प्रशिक्षण एवं अनुकूल वातावरण वनाने के प्रयास का अभाव भी रहा है। इस अभाव को दूर करने पर योजनाओं की पूर्ति में पंचायतीराज संस्थाओं का योगदान वढ़ सकता है।

नवां अध्याय

अखिल भारतीय पंचायत परिषद की भूमिका

स्थापना का संदर्भ:– अखिल भारतीय पंचायत परिषद् राष्ट्रीय स्तर का संगठन है जो कि पंचायतीराज की संस्थाओं को गैर सरकारी स्तर पर एक सूत्र में बांधने का प्रयास करता है। पंचायतीराज में शक्ति जन-प्रतिनिधियों के हाथ में रहेगी, यह अपेक्षा रहती है। ये जन-प्रतिनिधि दल, पक्ष एवं स्वार्थ से मुक्त रहकर जनता की सेवा करेंगे, ऐसी आशा की जाती है। इस प्रकार की पंचायती-राज की विविध इकाईयों को एक सूत्र में बांधने की आवश्यकता महसूस की गयी। अखिल भारतीय पंचायत परिषद् की स्थापना इसी आवश्यकता की पूर्ति को ध्यान में रख कर सन् 1958 में श्री बलवन्तराय मेहता तथा पंचायत आन्दोलन के कई एक अन्य नेताओं द्वारा की गयी थी। उसी वर्ष के अप्रैल मास में पंचायतों के प्रतिनिधियों तथा पंचायतों में अभिरुचि रखने वाले व्यक्तियों का एक अखिल भारतीय सम्मेलन बिहार प्रदेशीय पंचायत परिषद् के मंत्री श्री लाल सिंह त्यागी, द्वारा जसिडिह (देवघर) में बुलाया था। बिहार प्रादेशीय पंचायत परिषद् की स्थापना इसके पूर्व ही सन् 1950 में हो चुकी थी। अखिल भारतीय सम्मेलन में मध्यप्रदेश, पंजाब, आन्ध्रप्रदेश, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बम्बई, पं० बंगाल, राजस्थान तथा बिहार से आने वाले प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। सम्मेलन के प्रधान श्री बलवन्तराय मेहता थे, जिनकी प्रेरणा ही इस सम्मेलन का प्रमुख सूत्रधार बनी थी। अखिल भारतीय पंचायत परिषद ने इसी सम्मेलन में जन्म लिया था।

प्रारम्भ में अखिल भारतीय पंचायत परिषद् ग्राम पंचायतों का एक अखिल भारतीय संगठन थी। किन्तु पंचायतीराज का सूत्रपात होते ही प्रखण्ड तथा जिले स्तर पर दो अन्य पंचायती संस्थानों की स्थापना हो गयी। फलस्वरूप यह आवश्यक हो गया कि इन नए संस्थानों को भी अखिल भारतीय पंचायत परिषद् के परिवार में शामिल किया जाय। अतएव परिषद् ने संविधान में वांछनीय संशोधन सुझाने के लिए एक संविधान समिति को नियुक्त किया।

अखिल भारतीय पंचायत परिषद् विभिन्न प्रदेशों की पंचायत परिषदों अथवा संघों का मण्डल है। प्रादेशीय पंचायत परिषद् अथवा संघों को भी मण्डलात्मक स्वरूप धारण करना पड़ा, जिसके फलस्वरूप ही वे संगठन ग्रामपंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद् जैसी पंचायतीराज के तीनों संस्थाओं का समन्वय कर सके। अखिल भारतीय पंचायत परिषद् का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि परिषद् तथा इसके अन्तर्गत समस्त प्रकार की सदस्य संस्थाएं राजनीति निरपेक्ष एवं दल निरपेक्ष संस्थाएं होंगी। यह भी दृष्टव्य है कि अखिल भारतीय पंचायत परिषद् एक अराजकीय तथा स्वायत्त संगठन है। अतएव वैधानिक दृष्टि से परिषद् की कोई प्रतिष्ठा नहीं और इसके समस्त निर्णय परामर्श के रूप में ही रहेंगे। परिषद् का काम प्रधानत: शिक्षणात्मक होगा।*

अखिल भारतीय पंचायत परिषद् के विधान में संगठन के बारे में कहा गया है—यह एक राजनीति निरपेक्ष संगठन रहेगा जो पंचायत, नगरपालिका, नगर निगम, केन्द्रीय संसद तथा प्रादेशीय विधान सभा आदि किसी भी वैधानिक संस्थान के निर्वाचन में एक दल के रूप में भाग नहीं लेगा।

उद्देश्य — इसके उद्देश्यों को विधान में इस रूप में गिनाया गया है —

(अ) देश भर के ग्राम, प्रखण्ड तथा जिले स्तर पर स्थापित पंचायतीराज संस्थानों को एक सर्व सामान्य विचार स्थल पर समवेत करना जिससे कि वे—

क- पारस्परिक सहयोग द्वारा शक्ति का संचय कर सके और प्रजातन्त्र तथा राष्ट्रीय उत्थान के सार्थक माध्यम सिद्ध हो सके,

ख- सर्व सामान्य समस्याओं के समाधान के लिए तथा सर्व सामान्य उद्देश्यों की ओर अग्रसर होने के लिए मिलकर विचार विनिमय कर सके।

ग- एक-दूसरे के अनुभवों से लाभान्वित हो सके और

घ- परस्पर पृथक रहने के परिणामस्वरूप संकीर्ण बन जाने की अपेक्षा एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास कर सके।

(आ) पंचायतीराज के प्रसंग में जनमत को शिक्षित करना जिसके फलस्वरूप स्वराज्य के प्रसार में जनगण का सहयोग बढ़े।

---

* श्री जयप्रकाश नारायण, अ.भा.पं.प. का विधान में प्रस्ताव से, अ.भा.पं.प. नयी दिल्ली, 1951.

(इ) ग्रामीण समाज में सामुदायिक श्रद्धा, स्वावलंबन तथा सहयोग का समावेश करना।

(ई) पंचायतीराज के कर्मचारियों में सम्पूर्ण समाज के प्रति साधारण तथा आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के प्रति विशेषतया दायित्व की सम्पर्क भावना को जगाना।

(उ) क- तत्सम्बन्धी कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना तथा तदर्थ प्रशिक्षणालय अथवा प्रतिष्ठान खोलना अथवा चलाना,

ख- उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए केन्द्रीय तथा प्रादेशीय सरकारों, शिक्षण संस्थाओं तथा स्वायत्त संगठनों के साथ सहयोग करना,

(ऊ) पंचायतीराज से सम्बन्धित प्रसंगों पर विशेषतया तथा ग्रामीण जीवन प्रसंगों पर और समस्याओं पर साधारणतया अन्वेक्षण तथा गवेक्षण का प्रबन्ध करना,

(ए) पर्यवेक्षण निर्धारण तथा क्षेत्रगत अन्वेक्षण की योजनायें चलाना।

(ऐ) पुस्तक, पुस्तिका, पत्र-पत्रिका, इत्यादि प्रस्तुत तथा प्रकाशित करना।

(ओ) उपरोक्त उद्देश्यों में से किसी एक अथवा समस्त की पूर्ति के लिए केन्द्रीय तथा प्रादेशीय सरकारों, शिक्षण संस्थाओं तथा स्वायत्त संगठनों के साथ सहयोग करना, और।

(औ) वे सब अन्य कार्य करना जो अ.भा.पं.प. के उद्देश्यों को अग्रसर तथा पूर्ण करने के लिए आवश्यक हो।*

कार्य की दिशा—पंचायतीराज को विकेन्द्रित समाज रचना की दिशा में बढ़ने के लिए मजबूत कदम माना गया है। भारत जैसे विशाल देश में स्थानीय नेतृत्व में विविधता स्वाभाविक है। ग्राम प्रखण्ड एवं जिला स्तर पर दल, पक्ष एवं स्वार्थ से मुक्त मजबूत नेतृत्व विकसित हो इसके लिए काफी प्रयास की आवश्यकता है। पंचायतीराज स्थानीय स्तर पर समस्याओं को सुलझाने का, स्थानीय नेतृत्व के आधार पर करने का प्रयास करता है। गांव-गांव में स्वस्थ नेतृत्व का विकास करना पंचायतीराज और इस प्रकार, अखिल भारतीय पंचायत परिषद् की प्रमुख चिंता है। गांव के नेतृत्व की परिस्थिति से अवगत रहने वाला हर व्यक्ति जानता है कि भारत में ग्राम नेतृत्व की किस प्रकार की समस्यायें हैं। अशिक्षा, परम्परागत एवं रूढ़िगत नेतृत्व का दबाव, सामन्ती मानस, जातिगत संकीर्णता, स्थानीय नेतृत्व को काफी संकीर्ण स्थिति में पहुँचा देता है। यहां यह

* अखिल भारतीय पंचायत परिषद् का विधान, पेज 9-10.

भी स्वीकार करना चाहिये कि उपरोक्त संकीर्णता को दलगत राजनीति ने और अधिक बढ़ाया है। उसने गांव को दलों में बांटने में मदद की है। फलस्वरूप पंचायतीराज गांव के सर्व के कल्याण की चिन्ता नहीं कर पाता है और वह भी उपरोक्त संकीर्णता का शिकार हो जाता है। परन्तु उस स्थिति से मुक्त हुए बिना पंचायतीराज की सफलता संदेह-युक्त हो जाती है। पंचायतीराज तो ग्राम माता की तरह सभी प्रकार के भेद-भाव एवं संकीर्णता को भुलाकर पूरा गांव "सर्व" की चिन्ता करे, तभी उसका हेतु पूरा होता है। परन्तु यह सब कैसे होगा? लोकतांत्रिक मूल्यों को स्वीकार करने पर यह भी स्वीकार करना होगा कि यह कार्य दबाव या नौकरशाही के जरिये नहीं किया जा सकता है। यह कार्य दलगत राजनीति या किसी दल विशेष द्वारा भी किया जाना सम्भव नहीं है। पंचायतीराज एवं अखिल भारतीय पंचायत परिषद् के प्रणेता श्री बलवन्त राय मेहता ने ठीक ही कहा है, कि यह केन्द्रीय संगठन शिक्षणात्मक एवं मार्गदर्शक कार्य करेगा न कि निर्देशात्मक। यह पंचायत के काम में लगे जन-प्रतिनिधियों का अपना संगठन होगा और उन्हें पंचायतीराज के मूल उद्देश्यों की ओर बढ़ने में मदद करेगा।* अखिल भारतीय पंचायत परिषद् स्थानीय इकाईयों से सम्बद्ध जन-प्रतिनिधियों का प्रशिक्षण का कार्य हाथ में ले सकता है। इसके साथ-साथ पंचायतीराज संस्थाओं को सही दिशा देने के लिए उनके प्रशिक्षण का कार्य भी परिषद् का कार्य-क्षेत्र होगा। ग्राम पंचायत, न्याय पंचायत, पंचायत समिति के कार्यों की व्यापक जानकारी जन-प्रतिनिधियों को देने एवं उसे लोक-तांत्रिक मूल्यों के अनुरूप ढालने का कार्य परिषद् करता रहा है।

परिषद् का एक प्रमुख कार्य राज्य एवं उसके द्वारा बनाये गये कानूनों को पंचायतीराज की संस्थाओं एवं व्यक्तियों के बीच समन्वय स्थापित करना और इसमें आनेवाली बाधाओं को समाप्त करना है। कानून बनने के बाद वह ग्राम, क्षेत्र एवं जिला स्तर पर लागू हो, इस काम में परिषद् मदद करता है। कानून को लागू करने की भावना जागृत करना, स्थानीय स्तर पर आने वाली कठि-नाईयों को दूर करने में परिषद् मददगार हो सकता है। उदाहरण के लिए भूमि सुधार सम्बन्धी कानून, कृषक मजदूर सम्बन्धी कानून, स्थानीय आर्थिक विकास सम्बन्धी योजनाओं को लागू करने में पंचायतीराज की प्रमुख भूमिका है। अखिल भारतीय पंचायत परिषद् इन कार्यों में जन-प्रतिनिधियों को आने वाली कठिनाईयों को दूर करने में मददगार हो सकता है, इसके साथ-साथ परिषद् इस दिशा में मानसिक अनुकूलता की भावना भी विकसित कर सकता है। पक्ष, दल

* श्री बलवन्तराय मेहता, उद्घाटन भाषण, अ.भा.पं.प. का वार्षिक अधिवेशन, बंगलौर, 1964.

या किसी गुट से सम्बन्ध नहीं होने के कारण परिषद् तटस्थ होकर इस कार्य में सहयोग करने की स्थिति रखता है।

देश भर में फैली पंचायतीराज की संस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करना परिषद् का प्रमुख कार्य है। विभिन्न राज्यों में वहां की परिस्थिति एवं अनुभव के अनुसार पंचायतीराज की व्यवस्था में थोड़ा अन्तर देखने को मिल सकता है। सबके अनुभव का लाभ सबको मिले एवं सभी राज्य पंचायतीराज की दिशा में समन्वित रूप से आगे बढ़ें, इस कार्य में परिषद् मददगार हो सकता है। यह एक राष्ट्रीय मंच है जहां देश भर की पंचायतीराज से सम्बद्ध संस्थाओं एवं व्यक्तियों को एक सूत्र में बांधने का प्रयास होता है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है परिषद् देश भर के पंचायतीराज संघों का केन्द्रीय संगठन है, यह इसी प्रकार की समउद्देश्य संस्थाओं से एक साथ मिलकर कार्य करने का प्रयास करता है ताकि पंचायतीराज को बल मिल सके। सामान्यतया यह माना जाता है कि पंचायतीराज का सम्बन्ध गांव से है, लेकिन श्री एस. के. डे. ने कहा है कि पंचायतीराज की मूल कल्पना को शहरी क्षेत्र में भी अपनाया जा सकता है। विकेन्द्रित एवं स्वशासित व्यवस्था का विकास शहरों में किया जाना चाहिये, इस दृष्टि से परिषद् का कार्य-क्षेत्र शहरों तक फैल सकता है। परन्तु हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि अभी परिषद् इतना सक्षम नहीं हो सका है कि शहरों में इस दिशा में प्रयास किया जा सके।

अखिल भारतीय पंचायत परिषद् अपने लक्ष्य की ओर कितना बढ़ सका है यह उसकी क्षमता, आर्थिक साधन, अनुभव एवं जन-सहयोग पर निर्भर करता है। हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि परिषद् के पास अत्यन्त सीमित साधन हैं। इस सीमित साधन से यह सम्भव नहीं कि इतने बड़े देश में किसी व्यापक कार्यक्रम को देश-व्यापि रूप में हाथ में लिया जा सके। फिर भी परिषद् समय-समय पर विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों को हाथ में लेता रहा है। अखिल भारतीय पंचायत परिषद् के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री एस. के. डे. ने परिषद् द्वारा किए जा सकने वाले कार्यक्रमों को इस रूप में प्रस्तुत किया है।*

1. स्थानीय स्तर पर योजना निर्माण में मदद का कार्य परिषद् कर सकता है।

---

* श्री एस. के. डे., आल इन्डिया पंचायत परिषद्: ए न्यू डायमेंशन., अ. भा. पं. प., नयी दिल्ली, पेज 5.

2. स्थानीय साधनों के संग्रह में परिषद् मददगार हो सकता है जैसे, श्रम, नकद पैसा, साधन आदि का संग्रह।

3. श्रम की स्थापना।

4. कानून को लागू करने में पंचायतीराज संस्थाओं की मदद करना।

5. लोक शिक्षण हेतु नागरिक कौंसिल का निर्माण करना।

6. प्रौढ़ शिक्षण का कार्य।

7. पंचायतीराज से सम्बद्ध सरकारी या जन-प्रतिनिधियों का प्रशिक्षण, प्रचार एवं प्रकाशन।

8. समाज के कमजोर वर्ग के लोगों की मदद।

9. सहकारिता का विकास।

10. पंचायतीराज से संम्बन्धित पत्र का प्रकाशन।

11. जनशक्ति जागरण-जनता में लोकतांत्रित मूल्यों का विकास हो, इस दृष्टि से की जाने वाली प्रवृत्तियों को हाथ में लेना।

12. पंचायतीराज पर शोध एवं मूल्यांकन का कार्य।

ऊपर उन कार्यों को गिनाया गया है जो कि परिषद् द्वारा किया जाने का प्रयास होता है। इनमें से कुछ कार्य परिषद् कर सका है। ज्यादातर कार्य प्रशिक्षात्मक, संगठनात्मक एवं मूल्यांकन सम्बन्धी है। सीमित साधन होने के कारण व्यापक कार्य नहीं किया जा सका है। परिषद् का संगठन मजबूत हो, इस दिशा में प्रयास किया गया है और इसमें राज्य सरकारों एवं केन्द्र सरकार की आंशिक मदद भी मिली है। अब तक जो मदद मिलती रही है, उसे प्रर्याप्त नहीं कहा जा सकता है।

ऊपर हमने उन कार्यों के बारे में विचार किया जो कि परिषद् द्वारा किया जाना चाहिये या किया जा सकता है, पर वे सभी कार्य किये नहीं जा सके हैं। अखिल भारतीय पंचायत परिषद् द्वारा अब तक जो कार्य किये जाते रहे हैं, उसे संक्षेप में इस रूप में गिनाया जा सकता है।

1. राष्ट्रीय सम्मेलन।
2. राज्यों के पंचायत मन्त्री या अन्य उच्च-स्तरीय नेताओं का सम्मेलन।
3. पंचायतीराज संस्थाओं के बीच राज्य स्तरीय समन्वय।
4. विभिन्न राज्यों में जन-प्रतिनिधियों का प्रवास।

5. प्रशिक्षण ।

6. समस्याओं पर विचार विनियम ।

8. केन्द्र एवं राज्य सरकारों से सम्पर्क ।

9. शोध एवं मूल्यांकन ।

10. प्रकाशन ।

11. श्री बलवन्तराय मेहता पंचायतीराज फाउन्डेशन ।

12. रजत-जयन्ती ।

13. अन्य ।

प्रारम्भ से ही अ० भा० पं० प० राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन करता रहा है । इस प्रकार के राष्ट्रीय सम्मेलनों में पंचायतीराज से संबद्ध प्रतिनिधियों के अतिरिक्त विद्वान, राजनेता एवं अन्य प्रमुख लोग भाग लेते रहे हैं । सम्मेलन में पंचायतीराज के विविध पक्षों, समस्याओं पर विचार होता । इस प्रकार के राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रचारात्मक महत्व के अतिरिक्त सबसे बड़ा लाभ समस्याओं को समझने एवं कार्य को गति प्रदान करने की प्रेरणा मिलना होता है । जयपुर, बंगलौर, बारडोली आदि स्थानों में इस प्रकार के राष्ट्रीय सम्मेलनों में बड़ी संख्या में लोगों ने भाग लिया । विभिन्न राज्यों के पंचायत मंत्रियों को एक साथ मिलाने में इस प्रकार का सम्मेलन उपयोगी रहा । यह कार्य परिषद् करता रहा और आज भी राज्यों के पंचायत मंत्रियों एवं अन्य अधिकारियों से परिषद् का सम्बन्ध बना हुआ है । राष्ट्रीय सम्मेलन* परिसंवाद का जो लाभ मिला, उसे हम परिषद् के प्रकाशनों में देख सकते हैं । व्यवहार में सबसे बड़ा लाभ—1. अनुभव का आदान-प्रदान 2. पंचायतीराज को गति प्रदान करने की प्रेरणा और 3. समस्याओं के समाधान की खोज में मदद मानना चाहिये ।

परिषद् देश भर में फैली पंचायतीराज संस्थाओं, ग्रामपंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद् को एक सूत्र में बांधने का काम करता है । इस काम में परिषद् की ओर से निकलने वाला पत्र एवं अन्य प्रकाशन मददगार होता है । परिषद् समय-समय पर प्रचारात्मक सामग्री भी प्रकाशित करता रहा है । पंचायतीराज की इकाईयों का एक-दूसरे से सम्पर्क बना रहे, इसका प्रयास परिषद् करता रहा है । इस दृष्टि से परिषद् की ओर से जन-प्रतिनिधियों का प्रवास का कार्यक्रम बनता रहा है । एक राज्य या एक क्षेत्र के जन-प्रतिनिधि दूसरे क्षेत्र या राज्य में

* देखें, राष्ट्रीय सम्मेलनों की रिपोर्ट, अ.भा.पं.प., नयी दिल्ली ।

प्रवास पर जाते रहे हैं। इससे एक-दूसरे को समझाने में मदद मिलती है। यह कार्यक्रम आम-तौर पर राज्य स्तरीय पंचायत परिषदों द्वारा किया जाता रहा है।

प्रशिक्षण की दृष्टि से परिषद् स्वयं को अभी तक शिविरों से आगे नहीं बढ़ा सका है। राज्य परिषद् जन-प्रतिनिधियों का शिविर आयोजित करता रहा है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारें प्रशिक्षण की योजनाऐं चलाती हैं। पंच, सरपंच, पंचायत समिति के प्रधान आदि के लिए प्रशिक्षण योजनाऐं चलती रही हैं। यह दुःख की बात है कि पिछले कुछ वर्षों से प्रशिक्षण की दिशा में सरकारें उदासीन हो चली हैं। कतिपय कारणों से जन-प्रतिनिधि भी प्रशिक्षण के प्रति उदासीन हो चले हैं।

परिषद् समस्याओं पर विचार करने के लिए क्षेत्रीय परिसंवाद, सम्मेलन एवं छोटी गोष्ठियों का आयोजन भी करता रहा है। 1966 में जयपुर में एक क्षेत्रीय सम्मेलन किया गया था जिसकी अध्यक्षता श्री जयप्रकाश नारायण ने की थी। इस प्रकार के परिसंवादों में पंचायतीराज की समस्याओं पर खुलकर विचार-विनिमय होता है। सन् 1964 में उदयपुर में एक राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन किया था। परिसंवाद का विषय था "पंचायतीराज की मौलिक समस्यायें।" श्री जयप्रकाश नारायण की अध्यक्षता में हुए इस परिसंवाद में पंचायतीराज की विविध समस्याओं पर विस्तारपूर्वक विचार-विमर्श हुआ।* इसी प्रकार का व्यापक विचार-विमर्श उसी वर्ष हुए राष्ट्रीय सम्मेलन (बंगलौर) में भी हुआ। पिछले कुछ वर्षों से राज्य स्तर पर सम्मेलन एवं परिसंवादों का आयोजन किया जाता रहा है। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र आदि में राज्य पंचायत परिषद् की ओर से परिसंवादों का आयोजन किया गया जिसमें परिषद् (केन्द्रीय) की प्रेरणा एवं सहयोग रहा।

अखिल भारतीय पंचायत परिषद् ने पंचायतीराज पर शोध का कार्य भी किया है। जैसा कि इसके उद्देश्यों में कहा गया हैं परिषद् ने अनेक राज्यों में पंचायतीराज की समस्याओं एवं कार्यों का सर्वेक्षण का कार्य पूरा किया है। इन कार्यों में इसे केन्द्र एवं राज्य से आर्थिक मदद भी मिली। परिषद् ने दस राज्यों में पंचायतीराज का एक व्यापक सर्वेक्षण का काम भी हाथ में लिया। मद्रास में पंचायतीराज पर एक व्यापक अध्ययन प्रकाशित भी हुआ है। दस राज्यों में किया गया अध्ययन केन्द्रीय मंत्रालय को भेजा गया है। मद्रास के अध्ययन के

---

* देखें सेमीनार ऑन फन्डामेंटल प्राब्लम्स ऑफ पंचायतीराज, अ.भा.पं.प., नई दिल्ली, 1964.

अतिरिक्त आन्ध्र प्रदेश एवं राजस्थान में पंचायतीराज का भी सर्वेक्षणात्मक अध्ययन किया गया है। इसी प्रकार महाराष्ट्र एवं असम का भी अध्ययन किया गया। परिषद् की ओर से अध्ययन दल ने भी समय-समय पर विभिन्न राज्यों में पंचायतीराज की परिस्थिति का अवलोकन किया है।

पंचायतीराज के प्रेरणा स्त्रोत श्री बलवन्तराय मेहता की स्मृति में एक प्रतिष्ठान स्थापित करने का निर्णय परिषद् ने लिया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने भी इस कार्य में रुचि ली, तद्नुसार बलवन्तराय मेहता पंचायतीराज फाउन्डेशन की स्थापना की गयी। बलवन्तराय मेहता पंचायतीराज फाउन्डेशन के उद्देश्यों में कहा गया है कि इसका मुख्य कार्य विकेन्द्रित समाज रचना और इस प्रकार पंचायतीराज को शक्तिशाली बनाना है। इस दृष्टि से पंचायतीराज संस्थाओं को अधिक सक्षम एवं गतिशील बनाने का प्रयास करेगा। यह अपने उद्देश्यों की पूर्ति में अ०भा०पं०प० या उससे संबद्ध संस्थाओं को भी मदद करेगा। इसके साथ-साथ लक्ष्य की पूर्ति के लिए चलाये जा रहे सरकारी या गैर-सरकारी कार्यक्रमों को भी मदद करना इसका लक्ष्य माना गया। पंचायतीराज को मजबूत बनाने के लिए प्रशिक्षण देने एवं कैडर तैयार करने का कार्यक्रम भी यह फाउन्डेशन अपने हाथ में लेता है।*

उक्त लक्ष्यों की पूर्ति में फाउन्डेशन शोध-सर्वेक्षण का व्यापक कार्यक्रम भी हाथ में लेगा। पुस्तक प्रकाशन, छात्रवृति आदि का कार्य भी फाउन्डेशन द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार इस फाउन्डेशन की ओर से शोध-सर्वेक्षण, प्रशिक्षण एवं प्रकाशन का काम किया जाता रहा है। अब तक फाउन्डेशन की मुख्य शक्ति अ०भा०पं०प० के साथ मिलकर अपने उद्देश्य के अनुरूप कार्यक्रमों में मदद पहुंचाना रहा है। ऊपर जिन कार्यक्रमों का उल्लेख किया गया है, इनमें से कई कार्यक्रमों में फाउन्डेशन का सक्रिय सहयोग मिला है।

भारत में पंचायतों के पच्चीस वर्ष पूरे होने पर इसकी रजत-जयन्ती मनाने का निर्णय अ०भा०पं०प० ने किया। माना यह गया कि इस बीच पंचायतीराज को गति प्रदान की जाय। रजत-जयन्ती वर्ष में अनेक कार्यक्रमों को हाथ में लिया गया। अखिल भारतीय पंचायत परिषद् ने देश भर के पंचायतीराज की संस्थाओं को रजत-जयन्ती वर्ष में नई दिशा देने का प्रयास किया। इस दौरान विभिन्न राज्यों में अलग-अलग ढंग से रजत-जयन्ती का कार्यक्रम बनाया गया।

* किसान नेशनल कांफ्रेंस, बरडोली (1968), जनरल सेक्रेटरी का प्रतिवेदन, अ.भा.पं.प. नई दिल्ली, 1968.

प्रदेशीय पंचायत परिषदों ने अपनी क्षमता एवं परिस्थिति के अनुकूल रजत-जयन्ती का कार्यक्रम बनाया। अ०भा०पं०प० परिषद् की ओर से सामान्य कार्यक्रमों के बारे में जानकारी पत्रक प्रसारित किया गया। परिषद् की ओर से रजत-जयन्ती वर्ष में कई कार्यक्रमों को पूरा करने पर जोर दिया गया है। ये कार्यक्रम इस प्रकार हैं:–(1) पंचायत घर का निर्माण (2) पंचायत लिंक रोड (3) पेय जल की पूर्ति (4) गृह विहीन परिवारों के लिए जमीन व मकान (5) ग्रामीण विद्युतीकरण (6) शिक्षा (7) लघु सिंचाई (8) खाद (9) पशु-पालन (10) कुटीर उद्योग (11) स्वच्छता, सफाई एवं प्राथमिक चिकित्सा (12) पंचवर्षीय योजना (13) ग्राम-रक्षा दल (14) सहकारिता (15) भूमि-सुधार (16) पंचायत दिवस (17) परिवार नियोजन (18) पंचायत परिषदों का कार्यक्रम (19) पिछड़े कार्यक्रमों को एवं पैन्डिग मुकदमों को निपटाना (20) पंचायत परिषदों का स्थायी कोष कायम करना आदि।*

अखिल भारतीय पंचायत परिषद् भारत में पंचायतीराज को गति प्रदान करने में जो महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है उसकी सराहना की जानी चाहिए। पंचायतीराज की सम्पूर्ण गतिविधियों पर दृष्टि डालने पर स्पष्ट होता है कि यही एक ऐसा संगठन दिखाई देता है जो कि पंचायतीराज को मूर्त-रूप देने में अपनी पूरी शक्ति लगा रहा है। परिषद् के सतत् प्रयास का ही परिणाम है कि पंचायतीराज के बारे में अनुकूल वातावरण बना हुआ है। यह लिखते हुए दुःख होता है कि पिछले कुछ वर्षों से पंचायतीराज के प्रति जो उदासीनता का भाव विकसित हो रहा है, इससे इस कार्य के बारे में निराशा सामने आयी है। पंचायतीराज के कार्य में पुनः उत्साह की भावना विकसित करने की सख्त आवश्यकता है। यह कार्य अखिल भारतीय पंचायत परिषद् कर सकता है। पहले तो इस बात पर गहराई से विचार किया जाना चाहिये कि पंचायतीराज के प्रति निराशा की भावना का क्या कारण है? क्या इसके ढांचे या व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता है? यदि मौजूदा संरचना में कमी है तो उसे दूर करने का प्रयास किया जाना आवश्यक है। हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि भारत गांवों में बसता है। कुल आबादी का बड़ा भाग (करीब 82 प्रतिशत) गांवों में निवास करने वाला है। राष्ट्र के पुनर्निर्माण के कोई भी कार्यक्रम को ग्राम से पृथक नहीं किया जा सकता है। देश के पुनर्निर्माण का तात्पर्य है–भारतीय ग्राम का पुनर्निर्माण और यह कार्य गांव के लोगों के सहयोग से गांव के लोगों द्वारा बने संगठन से ही संभव है। मौजूदा व्यवस्था में वह संगठन पंचायतीराज है। यदि इस काम में शिथिलता आयी है तो वह दूर होनी चाहिए। अखिल भारतीय पंचायत परिषद् इस काम को कर सकेगा, यह आशा करना स्वभाविक है।

*देखें, श्री लालसिंह त्यागी, पंचायती रजत जयन्ती वर्ष कार्यक्रम, अ.भा.पं.प., नई दिल्ली, 1975.

उपसंहार

ग्रामपंचायत की व्यवस्था हमें विरासत में मिली है। प्राचीन काल से ही पंचायत की व्यवस्था चली आ रही है। यह व्यवस्था ग्रामीण समाज का आधार रही है। न्याय व्यवस्था तो पंच निर्णय पर ही आधारित थी, साथ ही साथ सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्र भी ग्राम पंचायत द्वारा संचालित होते थे। ऐतिहासिक दृष्टि से विभिन्न कालों में इसकी व्यवस्था भिन्न-भिन्न रही है। आधुनिक युग में ग्रामपंचायत का ह्रास होता गया। अंग्रेजी शासन ने पंचायती व्यवस्था को कमजोर बनाया और उसके स्थान पर केन्द्रीय व्यवस्था को मजबूत किया। गांव का स्वशासन क्रमशः कम होता गया और पंचायत की व्यवस्था के इस संकुचन को ग्रामीण जीवन में आयी उदासीनता एवं सम्बन्धों में कटुता के रूप में देख सकते हैं। फिर भी कुछेक क्षेत्रों में, खासकर आदिवासी समाज में परम्परागत पंचायत को देख सकते हैं। आज भी जातीय पंचायतें देखने को मिलती हैं लेकिन ये पंचायतें संकीर्ण भावना से प्रेरित है और इनका कार्य क्षेत्र भी काफी सीमित है। पंचायत का शाब्दिक अर्थ पंच शब्द के साथ जुड़ा हुआ है। यह पंचायत का क्षेत्र भी दर्शाता है और इस प्रकार पंचायत का मुख्य कार्य न्याय माना जाता है। परम्परागत पंचायतों का मुख्य कार्य भी न्याय का ही रहा है।

आधुनिक भारत में पंचायतों का विकास व्यापक संदर्भ में हुआ है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान गांधी जी एवं अन्य नेताओं ने भारत में ग्राम-पंचायत की व्यवस्था को लागू करने पर जोर दिया। गांधीजी ने तो "ग्राम स्वराज्य" के रूप में सर्वोदय समाज की कल्पना भी प्रस्तुत की जिसमें प्रत्येक गांव स्वशासित एवं अधिकतम स्वावलम्बी बनने का प्रयास करेगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद गांधीजी की कल्पना का ग्राम-स्वराज्य के अनुरूप संविधान का निर्माण नहीं हो सका लेकिन संविधान में ग्राम-पंचायत की मजबूत व्यवस्था को स्वीकार किया गया। संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में ग्रामपंचायत की व्यवस्था को लागू करने पर बल दिया गया।

भारतीय नियोजन में ग्राम-पंचायतों की योजनाबद्ध विकास की योजना बनी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के तहत ग्राम-पंचायतों का गठन किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अनुभव पर से ग्राम-पंचायत एवं सामुदायिक विकास कार्यक्रम, उसकी समस्यायें एवं भावी कार्यक्रम पर विस्तार से विचार की आवश्यकता महसूस की गयी। योजना आयोग ने श्री बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसने सामुदायिक विकास योजना एवं ग्राम-पंचायतों पर विस्तार से विचार किया। इस समिति में सन् 1957 में अपना प्रतिवेदन सरकार को दिया। सरकार ने इस पर विचार किया और पंचायतीराज की योजना को स्वीकार किया गया। मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर देश भर में तीन स्तरीय (ग्रामपंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद्) पंचायतीराज को स्थापित किया गया। सर्वप्रथम 1959 में राजस्थान में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने पंचायतीराज का शुभारम्भ किया। तदुपरान्त अन्य राज्यों में पंचायतीराज की स्थापना हुई।

पंचायतीराज की स्थापना राज्य के कानून के तहत की गई है। राज्यों को पंचायतीराज की मूल भावना एवं योजना को देखते हुए कानून बनाने की छूट दी गयी। फ़लस्वरूप पंचायतीराज की व्यवस्था में, विभिन्न राज्यों में थोड़ी बहुत भिन्नता देखी जाती है। मूल-रूप सभी राज्यों में एकसा होते हुए भी पंचायतीराज की विविध संस्थाओं के अधिकार, आय के स्रोत, गांवों की संख्या आदि में अन्तर देखा जा सकता है। इस कारण पूरे देश में पंचायतीराज के विविध संस्थाओं में पूर्ण एकरूपता का अभाव पाया जाता है। राज्य सरकारों ने अपनी परिस्थिति के अनुसार कानून का निर्माण किया है। इसका एक लाभ यह मिला कि पंचायतीराज में आये अनुभवों के अनुसार इसमें परिवर्तन का अवसर राज्यों को मिला। इससे प्रयोग की विविधता भी सामने आयी। आज आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न राज्यों को पंचायतीराज के अनुभवों पर विचार कर उसे गति प्रदान करने का मार्ग खोजा जाय।

ग्रामपंचायत को स्थापित हुए पच्चीस वर्ष हो चुके हैं। इस लम्बी अवधि में ग्राम-पंचायतों ने ग्राम विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पंचायतीराज की संस्थाओं ने सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक विकास की अनेक योजनाओं को हाथ में लिया है जिसका प्रत्यक्ष एवं सीधा लाभ गांव के लोगों को मिला। इस बीच ग्राम समाज में नया नेतृत्व भी विकसित हुआ है। जब पंचायतीराज व्यवस्था की स्थापना हुई तो इसका कार्य-क्षेत्र भी विकसित हुआ। समाज कल्याण,

आर्थिक विकास, न्याय आदि सभी कार्य पंचायतीराज संस्थाओं द्वारा किया जाने लगा। राज्य की योजना को लागू करने का माध्यम पंचायतीराज की संस्थायें बन गयीं। कई क्षेत्रों में औद्योगिक विकास का काम भी पंचायतीराज संस्थाओं द्वारा किया जाता है।

स्वतन्त्र भारत में ग्राम-पंचायतों का पच्चीस वर्ष पूरा हो चुका है और हमने इस उपलक्ष में रजत-जयन्ती भी मनायी है इस अवसर पर पंचायत व्यवस्था के विविध पक्षों पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। भारत में पंचायतीराज की दो स्थिति रही है। एक, यह हमें विरासत में मिली है और इस कारण यह जनता की व्यवस्था है। इस कार्य में पूरा सहयोग अपेक्षित है, बल्कि इसका आधार ही जन-सहयोग रहा है। दो, इसे राज्य ने मान्य किया और ग्राम विकास का और इस प्रकार भारत के विकास का आधार पंचायतीराज को माना है और राज्य ने इसे पूरा महत्व दिया है। इन दो बातों पर गंभीरता से विचार करने पर मौजूदा परिस्थिति को देखते हुए गम्भीर प्रश्न उठता है। क्या आज भी जनता का एवं राज्य का पूरा सहयोग या रुचि पंचायतीराज को प्राप्त है? क्या राज्य एवं जनता दोनों इसे पूरा महत्व एवं सभी प्रकार का सहयोग दे रही हैं? इस प्रश्न के उत्तर में ना नहीं कहा जा सकता है। ऐसा नहीं कह सकते कि पंचायतीराज की ओर से हाथ खींच लिया गया हो। ऐसा भी नहीं कह सकते कि जनता या राज्य ने इसे त्याग दिया है, लेकिन यह भी नहीं कह सकते कि जनता और राज्य इस काम में उत्साही हैं और इसमें सक्रिय सहयोग मिल रहा है। एक शब्द में इसे उदासीनता की स्थिति कह सकते हैं। राज्य एवं जनता दोनों ही इस काम के प्रति उदासीन हैं। यह उदासीनता पंचायतीराज और इस प्रकार भारतीय समाज के लिए हितकर नहीं है।

राज्य और जनता दोनों के उदासीन होने के कारण पंचायतीराज की गतिशीलता कम हो गयी। कई राज्यों में तो लम्बी अवधि से चुनाव ही नहीं हुए हैं और इस कारण लोग उदासीन हैं एवं कार्य में रुचि नहीं लेते हैं। राज्य सरकारों ने प्रारम्भ में पंचायतीराज में जो रुचि दिखाई, उसमें कमी आने के कारण कई समस्याएं उभरी हैं। पंचायतीराज के सामने कई प्रकार की कठिनाइयां हैं, इन कठिनाइयों को दूर करने से ही इसमें गति आ सकती है।

पंचायतीराज की संस्थाओं को कई प्रकार के अधिकार, कार्य एवं उसकी पूर्ति के लिए आर्थिक साधनों की व्यवस्था की गयी है। ग्रामपंचायत, न्याय पंचायत, पंचायत समिति एवं जिला परिषद् मुख्य संस्थाएं हैं। इन संस्थाओं को जो अधिकार दिये गये हैं उसमें परिवर्तन होता जा रहा है। कई राज्यों में तो

न्याय पंचायतें समाप्त की गयीं और उसके कार्यों को ग्राम-पंचायत को दे दिया गया है। कई राज्यों में जिला परिषद् को मजबूत बनाया गया। इस प्रकार का परिवर्तन बार-बार होने पर जन-प्रतिनिधियों को परेशानी होती है। एक समस्या अधिकार की कमी एवं अस्पष्टता की भी है। पंचायतीराज में जन-प्रतिनिधियों को व्यवहारतः सीमित अधिकार है। न्याय कार्य में भी काफी सीमित अधिकार हैं। यही स्थिति अन्य क्षेत्रों में भी हैं। आमतौर पर सरकारी कर्मचारी ही कार्यों को पूरा करते हैं और जन-प्रतिनिधि का स्थान गौण हो जाता है।

यह स्थिति पंचायतीराज के लिए अनुकूल नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि जन-प्रतिनिधि को कार्य का अधिक अवसर प्रदान किया जाय। यह कहा जाता है कि जन-प्रतिनिधि तकनीकी ज्ञान कम रखते हैं और साथ ही साथ वह कार्य की देखभाल के लिए कम समय निकाल पाते हैं। इस बात में एक हद तक सत्यता स्वीकार की जा सकती है। परन्तु यहां यह भी मानना चाहिए कि अब तक इस बात का प्रयास नहीं किया गया है कि जन-प्रतिनिधि किस-किस रूप में अधिक से अधिक कार्य में भागीदार बनें। उन्हें काम करने की पूरी छूट नहीं दी गई है। जिन क्षेत्रों में कार्य की छूट दी गयी है, उनमें जन-प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण एवं मार्ग-दर्शन की पूरी व्यवस्था नहीं की गयी। फलस्वरूप कार्य ठीक ढंग से नहीं चल सका।

पंचायतीराज संस्थाओं के सामने आर्थिक समस्या प्रारम्भ से रही है। विकास का आधार पंचायतीराज को मानते हुए भी उन्हें पर्याप्त आर्थिक साधन नहीं दिया गया। उनका स्वयं का आर्थिक साधन नहीं बन सका। राज्य की योजनाओं के अन्तर्गत जो राशि उन्हें मिल सकी, उसका ही उपयोग एक सीमा तक उनके द्वारा किया जा सका। कई परिस्थितियों में पंचायतीराज संस्था मात्र एजेन्सी रह गयी है। उनके अपने साधन इतने कम हैं कि स्वयं की शक्ति से कुछ कर पाने की स्थिति में नहीं होते हैं। यही कारण है कि स्थानीय स्तर पर योजना निर्माण की स्थिति नहीं बन सकी। माना यह गया था कि ग्राम-पंचायत ग्राम विकास की योजना बनायेगी और इसी प्रकार पंचायत समिति भी विकास की योजना बनायेगी। इससे नीचे से निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होगी। इस प्रक्रिया से गांव ग्राम-स्वराज्य की ओर आगे बढ़ सकेगा। लेकिन यह सम्भव नहीं हो सका और पंचायतीराज राज्य के ऊपर निर्भर बन गया। यही कारण है कि राज्य का आर्थिक संरक्षण कम होने एवं उसके उदासीन होने पर पंचायतीराज की पूरी व्यवस्था में शिथिलता आ गयी। इस परिस्थिति को बदलना होगा। इसके लिए स्थानीय आर्थिक साधनों का विकास, स्थानीय स्तर पर नियोजन एवं जन-प्रतिनिधियों का प्रशिक्षण का कार्यक्रम हाथ में लेना चाहिए। इसके लिए इस

प्रकार का प्रयास भी आवश्यक है, जिससे जनता में इस काम के प्रति रुचि जगे एवं सक्रियता आये।

पंचायतीराज को दलगत राजनीति के साथ जोड़ना हितकर नहीं है। पंचायतीराज की मूल भावना में गांव को एक करने, सम्बन्धों में मधुरता लाने की बात छिपी है। यह देखने में आया कि राजनीतिक दलवन्दी से गांव में कटुता बढ़ती है और पूरा गांव विकास एवं कल्याण के लिए एक होकर सोचे, इसमें बाधा पड़ती है। इसलिए पंचायत के चुनाव में राजनीतिक दलों का प्रवेश रोकना चाहिए। इसी के साथ चुनाव का प्रश्न जुड़ा हुआ है। पंचायतीराज की संस्थाओं का चुनाव समय पर न होना इसकी शिथिलता एवं उदासीनता का प्रमुख कारण है। चुनाव समय पर हो, इसकी मजबूत व्यवस्था की जानी चाहिए। जिस प्रकार विधान सभा या संसद के चुनाव के लिए चुनाव आयोग है, उसी प्रकार की व्यवस्था पंचायतीराज के चुनाव के लिए भी चुनाव आयोग का गठन कर की जानी चाहिए। राज्य सरकार को इस बात का प्रयास करना चाहिए कि चुनाव समय पर हो।

कमजोर वर्ग को विकास का अधिक अवसर कैसे मिले, इस बात पर विचार किया जाना चाहिए। समाज का आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के विकास में पंचायतीराज की प्रमुख भूमिका हो सकती है। इस बात पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए कि जिन क्षेत्रों में कमजोर वर्ग का बहुमत है, वह क्षेत्र उनके लिए सुरक्षित हो एवं वहां विकास की अधिक सुविधायें दी जायें। जिन क्षेत्रों में कमजोर वर्ग की संख्या कम है, वहां उनके हितों की रक्षा की योजना बनानी चाहिए। नेतृत्व विकास की दृष्टि से प्रगतिशील नेतृत्व का विकास एवं उसके प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

पंचायतीराज के प्रति उदासीनता को देखते हुए यह आवश्यकता महसूस की जा रही है कि इस प्रश्न पर राष्ट्रीय स्तर पर विचार किया जाय। केन्द्र सरकार इस काम में रुचि लेकर पंचायतीराज व्यवस्था पर पुनर्विचार कर सकती है। यदि इस बात की आवश्यकता हो कि पंचायतीराज की व्यवस्था में परिवर्तन किया जाना चाहिए तो इस मुद्दे पर विचार किया जाना चाहिए। पंचायतीराज को किस प्रकार गतिशील बनाया जाय, इस प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिए। यह प्रसन्नता की बात है कि पंचायतीराज पर पुनर्विचार के लिए एक समिति का गठन किया गया है। यह आशा की जानी चाहिए कि यह समिति सभी मुद्दों पर खुले दिमाग से विचार करेगी और इससे पंचायतीराज में आयी शिथिलता एवं उदासीनता समाप्त होगी।